आचार्य रजनीश

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

●

आचार्य रजनीश

सम्पादक
महीपाल

जीवन जागृति केन्द्र
प्रकाशन

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

•

आचार्य रजनीश

•

सम्पादक :

महीपाल

•

जीवन जागृति केन्द्र
प्रकाशन

प्रकाशक :
ईश्वरलाल नाराणजी शाह
मंत्री, जीवन जागृति केन्द्र,
५३, एम्पायर बिल्डिंग,
१४६, दादाभाई नवरोजी रोड,
बम्बई–१

संस्करण : प्रथम
मार्च, १९७१
मूल्य : ४ रुपये

मुद्रक :
नरेंद्र भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस,
त्रिलोचन, वाराणसी

रंजन बहिन प्रतापराय गडिया के आर्थिक अनुग्रह के सौजन्य से प्रकाशित

दो शब्द

जीवन के शाश्वत सत्य को आचरण का रूप प्रदान करने के हेतु आचार्यश्री रजनीश के ये संकलित प्रवचन बम्बई स्थित षण्मुखानन्द हॉल में ता० १ दिसंबर से ५ दिसंबर १९७० के बीच हुई चर्चा हैं। संयोगवश जैन मतावलम्बियों का पर्यूषण पर्व भी उन्हीं तिथियों में पड़ा था, अपितु इस चर्चा को सापेक्षिक कहा जाय तो अप्रासंगिक नहीं होगा। एक-एक दिन जीवन-साधना के एक-एक व्रत पर आचार्य श्री बोले और यों पंचमहाव्रत पूरे हुए, जो क्रमानुसार हैं—अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम और अप्रमाद! पाँचों ही नकारात्मक हैं, क्योंकि जो पाने योग्य नहीं है उसे ही अन्ततः खोना है।

अहिंसा हमारा स्वभाव है, जिसे आत्मज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है, और वह एक ही है। पर हिंसा बहु आयामी है, जो हमारा स्वभाव नहीं है सिर्फ एक्सीडेण्ट है। हिंसा सीधा धोखा नहीं दे सकती है, अहिंसा के बाने पहन कर ही हावी होती है। इसलिए ऊपर से अहिंसात्मक दिखने वाला रूप भी अक्सर हिंसा का ही सूक्ष्म रूप होता है। हिंसा दूसरे को दूसरा मानने से ही प्रारंभ हो जाती है; और हम सभी इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि दूसरे को सुख पहुँचाना, या दुःख न देना अहिंसा है––जो कभी नहीं है। जिस दिन 'दूसरा' मिट जाता है उस दिन व्यक्ति अहिंसा को उपलब्ध होता है।

अपरिग्रह में उतरने के पहिले परिग्रह को समझना आवश्यक है। परिग्रह हिंसा का ही एक रूप है। परिग्रह का अर्थ वस्तुओं का संग्रह नहीं, वस्तुओं पर (तथा व्यक्तियों पर भी) मालकियत की भावना–– Possessiveness। किन्तु वस्तुओं के संग्रह और मालकियत से भीतर की रिक्तता कभी नहीं भरी जा सकती। वस्तुएँ आत्मा नहीं बन सकतीं। न वस्तुओं की पकड़, न वस्तुओं का त्याग—दोनों अर्थहीन हैं। व्यक्ति को मालिक बनना है अपना। इसलिए जब भीतर की पूर्णता का जन्म होता है तो बाहर की पकड़ स्वयं ही विदा हो जाती है। और यह महसूस होता है कि क्या भूल कर रहा था जब कि कुछ पकड़ा ही नहीं जा सकता। और व्यक्ति सबके बीच रहते हुए भी नोन-पजेसिव हो जाता है।

अचौर्य का जन्म तब आवश्यक हो जायगा, जब परिग्रह विक्षिप्त हो कर चोरी बन जायगा। जब दूसरे की वस्तु भी अपनी दिखाई पड़ने लगेगी। परन्तु समृद्धि आने पर यह चोरी मिट सकती है, किन्तु आध्यात्मिक अर्थों में चोरी का अभिप्राय दूसरी चोरियों से है––चेहरों की चोरी, व्यक्तित्वों की चोरी, विचारों की चोरी, जो आप नहीं हैं उस दिखावे की चोरी, अनुकरण की चोरी, किसी को ओढ़ लेने की चोरी, इत्यादि। मेरा अनुभव जिस दिन अनिवार्यरूपेण निजी होगा, कोई ओढ़ा हुआ व्यक्तित्व नहीं होगा, उस दिन मैं अचौर्य को प्राप्त हो सकूँगा। शास्त्रों के विचार भी चोरी में ही शुमार होंगे। आपके अपने ही आचरण के अनुसार जब विचारों की उत्पत्ति होगी तो ही अचौर्य फलित होगा।

अकाम भीतर बहती हुई ऊर्जा है, शक्ति है। चेतना की इस अपरिमित शक्ति को टूटने न दें, बहिर्मुखी न होने दें तो परिणाम परमात्मा की अनुभूति है। यह ऊर्जा ऊपर की ओर गतिमान हो जाय तो आनन्द के द्वार खोल देती है। इस नई दिशा के हेतु पल-पल जीना, सृजनात्मक बनना और जीवन को सहजता से लेते हुए भीतर उतर जाना होगा। यही अमृत की खोज होगी।

अप्रमाद की साधना के चरण होंगे मूर्च्छा को तोड़कर जागरण को उपलब्ध होना। हम सोये हुए ही नहीं सोते रहते, जागे भी सोये ही रहते हैं। जाग्रत होने का खयाल सिर्फ भ्रम है हमारा। सारा कुछ नींद की स्थिति में ही, सिर्फ आदतन चल रहा है। लेकिन ध्यान रहे, धर्म सोये-सोये नहीं हो सकता। यदि चेतन मन में जागना फलित हो सके तो अचेतन में भी जागरण उतर सकता है। होशपूर्वक, विवेकपूर्वक सब काम हों––और इस प्रकार यदि सारी क्रियाओं के प्रति जागना हो जाय तो वही मोक्ष है, वही समाधि का अनुभव है।

इन पाँच महाव्रतों के संकलन का नाम दिया गया है––'ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया' जो कबीर की अमृतवाणी की फुहार है। जब व्यक्ति अपने को पा लेता है, 'स्व' में स्थित हो जाता है तो ऐसे व्यक्तित्वों में असमानता नहीं रह जाती। फिर कबीर कृष्ण की वाणी बोलते लगते हैं, जीसस महावीर की बात करने लगते हैं, जरथुस्त बुद्ध से मेल खा जाते हैं और आचार्य रजनीश फिर इनमें से किसी से भी भिन्न नहीं रह जाते। सब में एक, और एक में सभी समाहित हो जाते हैं। अध्यात्म के चरम विकास का यही प्रतिफलन है। अन्तराल, उत्तुंग शिखरों पर भासित होने लगते हैं और शिखर अन्तिम गहराइयों में उतर आते हैं। सभी कुच्छ एक हो जाता है। भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, सीमा-असीम सब मिट जाता है। मात्र अद्वैत ही अद्वैत रह जाता है····! उस क्षण वह परमात्म (व्यक्ति) कितनी सहजता से कह सकता है–ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया।––कहीं दाग नहीं पड़ने दिया, इतने जतन से ओढ़ी है। कुछ कम नहीं किया, कुछ खोया नहीं, किसी तृष्णा में दौड़ा नहीं। जैसी मिली वैसी ही सँभालो इसे।–– ये अपनी चादर!

जीवन जागृति केन्द्र,
बम्बई–१

––महीपाल

अन्तर्वस्तु

अहिंसा

•

पहला महाव्रत

आज मैं अहिंसा पर आपसे बात करूँगा। पंच महाव्रत नकारात्मक हैं, अहिंसा भी। असल में खोना नकारात्मक ही हो सकता है, नेगेटिव ही हो सकता है। उपलब्धि पोजिटिव होगी, विधायक होगी। जो मिलेगा वह वस्तुतः होगा और जो हमें खोना है, वह वही खोना है जो वस्तुतः नहीं है।

अंधकार खोना है, प्रकाश पाना है। असत्य खोना है, सत्य पाना है। इससे एक बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि नकारात्मक शब्द इस बात की खबर देते हैं कि अहिंसा हमारा स्वभाव है, उसे पाया नहीं जा सकता, वह है ही। हिंसा पायी गयी है, वह हमारा स्वभाव नहीं है। वह अर्जित है, एचीव्ड। हिंसक बनने के लिए हमें कुछ करना पड़ा है। हिंसा हमारी उपलब्धि है। हमने उसे खोजा है, हमने उसका निर्माण किया है। अहिंसा हमारी उपलब्धि नहीं हो सकती। सिर्फ हिंसा न हो जाय तो जो शेष बचेगा वह अहिंसा होगी।

इसलिए साधना नकारात्मक है। वह जो हमने पा लिया है और जो पाने योग्य नहीं है, उसे खो देना। वैसे कोई आदमी स्वभाव से हिंसक नहीं है, हो नहीं सकता। क्योंकि कोई भी दुःख को चाह नहीं सकता और हिंसा सिवाय दुःख के कहीं भी नहीं ले जाती। हिंसा एक्सीडेण्ट है, संयोगिक है। वह हमारे जीवन की धारा नहीं है। इसलिए जो हिंसक है वह भी चौबीस घंटे हिंसक नहीं हो सकता। अहिंसक चौबीस घंटे अहिंसक हो सकता है। हिंसक चौबीस घंटे हिंसक नहीं हो सकता। उसे भी किसी वर्तुल के भीतर अहिंसक ही होना पड़ता है। असल में, अगर वह हिंसा करता है तो किन्हीं के साथ अहिंसक हो सके, इसलिए करता है। कोई आदमी चौबीस घंटे चोर नहीं हो सकता। अगर कोई चोरी भी करता है तो इसीलिए कि कुछ समय के लिए वह बिना चोरी के हो सके। चोर का लक्ष्य भी अचोरी है और हिंसक का लक्ष्य भी अहिंसा है। और इसलिए ये सारे शब्द नकारात्मक हैं।

धर्म की भाषा में दो शब्द विधायक हैं। बाकी सब शब्द नकारात्मक हैं। उन दोनों को मैंने चर्चा से छोड़ दिया है। एक 'सत्य' शब्द विधायक है, पोजिटिव है और एक 'ब्रह्मचर्य' शब्द विधायक है, पोजिटिव है।

यह भी प्राथमिक रूप से ख्याल में ले लेना जरूरी है कि जो पाँच शब्द मैंने चुने हैं, जिन्हें मैं पंच महाव्रत कह रहा हूँ, वे नकारात्मक हैं। जब वे पाँचों छूट जायेंगे तो जो भीतर उपलब्ध होगा वह होगा सत्य, और जो बाहर उपलब्ध होगा वह होगा ब्रह्मचर्य।

सत्य आत्मा बन जायेगी इन पाँच के छूट जाने पर और ब्रह्मचर्य आचरण बन जायेगा इन पाँच के छूटने पर। वे दो विधायक शब्द हैं। सत्य का अर्थ है, जिसे हम भीतर जानेंगे। ब्रह्मचर्य का अर्थ है, जिसे हम बाहर जीयेंगे। ब्रह्मचर्य का अर्थ है––ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। ईश्वर जैसा आचरण उसी का हो सकता है, जो ईश्वर जैसा हो जाय। सत्य का अर्थ है––ईश्वर जैसे हो जाना। सत्य का अर्थ है ब्रह्म। और जो ईश्वर जैसा हो गया उसकी जो चर्या होगी, ब्रह्मचर्य होगी। और ब्रह्म जैसा आचरण होगा। यह दो शब्द धर्म की भाषा में विधायक हैं, पोजिटिव हैं। बाकी पूरे धर्म की भाषा नकारात्मक है। इन पाँच दिनों में इन पाँच नकार पर विचार करना है। आज पहले नकार पर, 'अहिंसा'–लेंगे।

अगर ठीक से समझें तो अहिंसा पर कोई विचार नहीं हो सकता है, सिर्फ हिंसा पर विचार हो सकता है और हिंसा के न होने पर विचार हो सकता है। ध्यान रहे अहिंसा का मतलब सिर्फ इतना ही है–हिंसा का न होना, हिंसा की एबसेन्स, अनुपस्थिति। हिंसा का अभाव।

इसे ऐसा समझें। अगर किसी चिकित्सक को पूछें कि स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है? कैसे आप डेफीनेशन करते हैं स्वास्थ्य की? तो दुनिया में स्वास्थ्य के बहुत से विज्ञान विकसित हुए हैं, लेकिन कोई भी स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं करता। अगर आप पूछें कि स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है? तो चिकित्सक पूछेगा जहाँ बीमारी न हो। लेकिन यह बीमारी की बात हुई, यह स्वास्थ्य की बात न हुई। यह बीमारी का न होना हुआ। बीमारी की परिभाषा हो सकती है, डेफीनेशन हो सकती है। बीमारी क्या है? लेकिन स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। स्वास्थ्य क्या है? इतना ही ज्यादा से ज्यादा हम कह सकते हैं कि जब कोई बीमारी नहीं है तो वह स्वस्थ है।

धर्म परम स्वास्थ्य है! इसलिए धर्म की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। सब परिभाषा अधर्म की है। इन पाँच दिनों में हम धर्म पर विचार नहीं करेंगे। अधर्म पर विचार करेंगे।

विचार से, बोध से अधर्म छूट जाय तो जो निर्विचार में शेष रह जाता है, उसी का नाम धर्म है। इसलिए जहाँ धर्म पर चर्चा होती है, वहाँ व्यर्थ चर्चा होती है! चर्चा सिर्फ अधर्म की हो सकती है। चर्चा धर्म की हो नहीं सकती। चर्चा बीमारी की हो सकती है, चर्चा स्वास्थ्य की नहीं हो सकती। स्वास्थ्य को जाना जा सकता है, स्वास्थ्य को जिया जा सकता है, स्वस्थ हुआ जा सकता है। चर्चा नहीं हो सकती। धर्म को जाना जा सकता है, जिया जा सकता है, धर्म में हुआ जा सकता है, धर्म की चर्चा नहीं हो सकती। इसलिए सब धर्मशास्त्र वस्तुतः अधर्म की चर्चा करते हैं। धर्म की कोई चर्चा नहीं करता।

पहली अधर्म की चर्चा हम करें, जो है हिंसा। और जो जो हिंसक हैं उनके लिए यह पहला व्रत है। यह समझने जैसा मामला है कि आज हम जो विचार करेंगे वह यह मान कर करेंगे कि हम हिंसक हैं। इसके अतिरिक्त उस चर्चा का कोई अर्थ नहीं। ऐसे भी हम हिंसक हैं। हमारे हिंसक होने में भेद हो सकते हैं। और हिंसा की इतनी पर्तें हैं, और इतनी सूक्ष्मताएँ हैं कि कई बार ऐसा भी हो सकता है कि जिसे हम ऐसा कह रहे हैं और समझ रहे हैं वह हिंसा का बहुत सूक्ष्म रूप हो। और ऐसा भी हो सकता है जिसे हम हिंसा कह रहे हैं वह भी अहिंसा का बहुत स्थूल रूप हो।

जिन्दगी बहुत जटिल है। उदाहरण के लिए, गांधी जी की अहिंसा को मैं हिंसा का सूक्ष्म रूप कहता हूँ और कृष्ण की हिंसा को अहिंसा का स्थूल रूप कहता हूँ। उसकी हम चर्चा करेंगे तो ख्याल में आ सकेगा। हिंसक को ही विचार करना जरूरी है अहिंसा पर। इसलिए यह भी प्रासंगिक है समझ लेना, कि दुनिया में अहिंसा का विचार हिंसकों की जमात से आया।

जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे। वह जमात हिंसकों की थी। उनमें एक भी ब्राह्मण नहीं था। उनमें एक भी वैश्य नहीं था। बुद्ध भी क्षत्रिय थे। दुनिया में अहिंसा का विचार ही हिंसकों की जमात से आया है। दुनिया में अहिंसा का ख्याल, जहाँ हिंसा घनी थी, सघन थी, वहाँ पैदा हुआ है। असल में हिंसकों को ही सोचने के लिए मजबूर होना पड़ा है अहिंसा के संबंध में। जो चौबीस घंटे हिंसा में रत हैं, उन्हीं को यह दिखाई पड़ा है कि यह हमारी बहुत अंतर-आत्मा नहीं है। असल में हाथ में तलवार हो, क्षत्रिय का मन हो, तो बहुत देर न लगेगी यह देखने में कि हिंसा हमारी पीड़ा है, दुःख है। वह हमारा जीवन नहीं है। वह हमारा आनन्द नहीं है।

आज का व्रत हिंसक के लिए है। यद्यपि जो अपने को अहिंसक समझते हैं वह आपके व्रत पर विचार करते हुए मिलेंगे! मैं तो मान कर चलूंगा कि हम हिंसक

इकट्ठे हुए हैं। और जब मैं हिंसा के बहुत रूपों की आपसे बात करूँगा तो आप समझ पायेंगे कि आप किस रूप के हिंसक हैं। और अहिंसक होने की पहली शर्त है, अपनी हिंसा को उसकी ठीक-ठीक जगह पर पहचान लेना। क्योंकि जो व्यक्ति हिंसा को ठीक से पहचान ले, वह व्यक्ति हिंसक नहीं रह सकता। हिंसक रहने की तरकीब, टेकनीक एक ही है कि हम अपनी हिंसा को अहिंसा समझें जायें। इसलिए असत्य, सत्य के वस्त्र पहन लेता है। हिंसा, अहिंसा के वस्त्र पहन लेती है। यों धोखा पैदा होता है।

सुनी है मैंने एक कथा, सीरियन कथा है।

सौंदर्य और कुरूपता की देवियों को जब परमात्मा ने बनाया, और वे पृथ्वी पर उतरीं तो एक झील के किनारे वस्त्र रख के वे स्नान करने गईं। स्वभावतः सौंदर्य की देवी को पता भी नहीं था कि उसके वस्त्र बदले जा सकते हैं। असल में सौंदर्य को अपने वस्त्रों का पता ही नहीं होता। सौंदर्य को अपनी देह का भी पता नहीं होता। सिर्फ कुरूपता को देह का बोध होता है, सिर्फ कुरूपता को वस्त्रों की चिंता होती है। क्योंकि कुरूपता वस्त्रों और देह की व्यवस्था से अपने को छिपाने का उपाय करती है। सौंदर्य की देवी झील में दूर स्नान करते निकल गई और तभी कुरूपता की देवी को मौका मिला; वह बाहर आई, उसने सौंदर्य की देवी के कपड़े पहने और चलती बनी। जब सौंदर्य की देवी बाहर आई तो बहुत हैरान हुई। उसके वस्त्र तो नहीं थे। वह नग्न खड़ी थी। गाँव के लोग जागने शुरू हो गये और राहों पर चलने लगे। उधर कुरूपता की देवी उसके वस्त्र ले के भाग गई थी तो मजबूरी में, उसे कुरूपता के वस्त्र पहन लेने पड़े। और कथा कहती है कि तब से वह कुरूपता की देवी का पीछा कर रही है और खोज रही है; लेकिन अब तक मिलना नहीं हो पाया। कुरूपता अब भी सौंदर्य के वस्त्र पहने हुए है और सौंदर्य की देवी अभी भी मजबूरी में कुरूपता के वस्त्रों को ओढ़े हुए है।

असल में असत्य को जब भी खड़ा होना हो तो उसे सत्य का चेहरा उधार लेना पड़ता है! उसे सत्य का ढंग अंगीकार करना पड़ता है। हिंसा को भी खड़े होने के लिए, अहिंसा बनना पड़ता है। इसलिए अहिंसा की दिशा में जो पहली बात जरूरी है, वह यह है कि हिंसा के चेहरे पहचान लेने जरूरी हैं। खास कर उसके अहिंसक चेहरे, नॉन-वायोलेन्ट फेसेज़ पहचान लेना बहुत जरूरी है। हिंसा, सीधा धोखा किसी को भी दे नहीं सकती। दुनिया में कोई भी पाप, सीधा धोखा देने में असमर्थ है। पाप को भी पुण्य की आड़ में ही धोखा देना पड़ता है। यह पुण्य के गुण-गौरव की कथा है। इससे पता चलता है कि पाप भी अगर जीतता है तो पुण्य का चेहरा लगा कर ही जीतता है। जीतता सदा पुण्य ही है! चाहे पाप

आपके ऊपर चेहरा बनके जीतता हो और चाहे खुद की अंतरात्मा बन के जीतता हो। पाप खुद कभी जीतता नहीं। पाप अपने में हारा हुआ है। हिंसा जीत नहीं सकती; लेकिन दुनिया से हिंसा मिटती नहीं। क्योंकि हमने हिंसा के बहुत अहिंसक चेहरे खोज निकाले। तो पहले हम हिंसा के चेहरे को समझने की कोशिश करें।

हिंसा का सबसे पहला रूप, सबसे पहली डायमेन्शन, उसका जो पहला आयाम है, वह बहुत गहरा है, वहीं से पकड़ें। सबसे पहली हिंसा, दूसरे को दूसरा मानने से शुरू होती है। टु कन्सीव दी अदर, एज दी अदर। जैसे ही मैं कहता हूँ आप दूसरे हैं मैं आपके प्रति हिंसक हो गया। असल में दूसरे के प्रति अहिंसक होना असंभव है। हम सिर्फ अपने प्रति ही अहिंसक हो सकते हैं, ऐसा स्वभाव है। हम दूसरे के प्रति अहिंसक हो ही नहीं सकते। होने की बात ही नहीं उठती, क्योंकि दूसरे को दूसरा स्वीकार लेने में ही हिंसा शुरू हो गई। वहुत सूक्ष्म है, बहुत गहरी है यह बात।

सात्र का वचन है—'दी अदर इज हेल', वह जो दूसरा है वह नरक है। सात्र के इस वचन से मैं थोड़ी दूर तक राजी हूँ। उसकी समझ गहरी है। वह ठीक कह रहा है, दूसरा नरक है। लेकिन उसकी समझ अधूरी भी है। दूसरा नरक नहीं है, दूसरे को दूसरा समझने में नरक है! इसलिए जो भी स्वर्ग के थोड़े से क्षण हमें मिलते हैं, वह तब मिलते हैं जब हम दूसरे को अपना समझते हैं। उसे हम प्रेम कहते हैं।

अगर मैं किसी को किसी क्षण में अपना समझता हूँ, तो उसी क्षण मेरे और उसके बीच जो धारा बहती है वह अहिंसा की है। हिंसा की नहीं रह जाती। किसी क्षण में दूसरे को अपना समझने का क्षण ही प्रेम का क्षण है। लेकिन जिसको हम अपना समझते हैं वह भी गहरे में दूसरा ही बना रहता है। किसी को अपना कहना भी सिर्फ इस बात की स्वीकृति है कि तुम हो तो दूसरे, लेकिन हम तुम्हें अपना मानते हैं। इसलिए जिसे हम प्रेम कहते हैं उसकी भी गहराई में हिंसा मौजूद रहती है। और इसलिए प्रेम की फ्लेम, वह जो प्रेम की ज्योति है, कभी कम कभी ज्यादा होती रहती है। कभी वह दूसरा हो जाता है, कभी अपना हो जाता है। चौबीस घंटे में यह कई बार बदलाहट होती है। जब वह जरा दूर निकल जाता है और दूसरा दिखाई पड़ने लगता है, तब हिंसा बीच में आ जाती है। जब वह जरा करीब आ जाता है और अपना दिखाई पड़ने लगता है, तब हिंसा थोड़ी कम हो जाती है। लेकिन जिसे हम अपना कहते हैं, वह भी दूसरा है। पत्नी भी दूसरी है, चाहे कितनी भी अपनी हो। बेटा भी दूसरा है, चाहे कितना भी अपना हो।

पति भी दूसरा है, चाहे कितना ही अपना हो। अपना कहने में भी दूसरे का भाव सदा मौजूद है। इसलिए प्रेम भी पूरी तरह अहिंसक नहीं हो पाता। प्रेम के भी हिंसा के अपने ढंग हैं।

प्रेम अपने ढंग से हिंसा करता है। प्रेम-पूर्ण ढंग से हिंसा करता है। पत्नी, पति को प्रेमपूर्ण ढंग से सताती है। पति, पत्नी को प्रेमपूर्ण ढंग से सताता है। बाप, बेटे को प्रेमपूर्ण ढंग से सताता है। और जब सताना प्रेमपूर्ण हो तो बड़ा सुरक्षित हो जाता है। फिर सताने में बड़ी सुविधा मिल जाती है, क्योंकि हिंसा ने अहिंसा का चेहरा ओढ़ लिया। शिक्षक विद्यार्थी को सताता है और कहता है तुम्हारे हित के लिए ही सता रहा हूँ। जब हम किसी के हित के लिए सताते हैं तब सताना बड़ा आसान है। वह गौरवान्वित, पुण्यकारी हो जाता है। इसलिए ध्यान रखना, दूसरे को सताने में हमारे चेहरे सदा साफ होते हैं। अपनों को सताने में हमारे चेहरे कभी भी साफ नहीं होते, इसलिए दुनिया में जो बड़ी-से-बड़ी हिंसा चलती है वह दूसरे के साथ नहीं, वह अपनों के साथ चलती है।

सच तो यह है कि किसी को भी शत्रु बनाने के पहले मित्र बनाना अनिवार्य शर्त है। किसी को मित्र बनाने के लिए शत्रु बनाना अनिवार्य शर्त नहीं है। शर्त ही नहीं है। असल में शत्रु बनाने के लिए पहले मित्र बनाना जरूरी है। मित्र बनाये बिना शत्रु नहीं बनाया जा सकता। हाँ मित्र बनाया जा सकता है, बिना शत्रु बनाये। उसके लिए कोई शर्त नहीं है शत्रुता की। मित्रता सदा शत्रुता के पहले है।

अपनों के साथ जो हिंसा है वह अहिंसा का गहरे से गहरा चेहरा है। इसलिए जिस व्यक्ति को हिंसा के प्रति जागना हो, उसे पहले अपनों के प्रति जो हिंसा है उसके प्रति जागना होगा। लेकिन मैंने कहा, किसी-किसी क्षण में दूसरा अपना मालूम पड़ता है। बहुत निकट हो गये होते हैं हम। यह निकट होना, दूर होना, बहुत सरल है। पूरे वक्त बदलता रहता है।

इसलिए हम चौबीस घंटे प्रेम में नहीं होते किसी के साथ। प्रेम के सिर्फ क्षण होते हैं। प्रेम के घंटे नहीं होते। प्रेम के दिन नहीं होते। प्रेम के वर्ष नहीं होते। ···· मोमेन्ट्स ओनली ····। लेकिन जब हम क्षणों से स्थायित्व का धोखा देते हैं तो हिंसा शुरू हो जाती है। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूँ तो यह क्षण की बात है। अगले क्षण भी करूँगा, जरूरी नहीं। कर सकूँगा, जरूरी नहीं। लेकिन अगर मैंने वायदा किया कि अगले क्षण भी प्रेम जारी रखूँगा तो अगले क्षण जब हम दूर हट गये होंगे और हिंसा बीच में आ गई होगी तब, तब हिंसा प्रेम की शक्ल लेगी। इसलिए दुनिया में जितनी अपना बनानेवाली संस्थाएँ हैं, सब हिंसक हैं।

परिवार से ज्यादा हिंसा और किसी संस्था ने नहीं की, लेकिन उसकी हिंसा बड़ी सूक्ष्म है। इसलिए अगर संन्यासी को परिवार छोड़ देना पड़ता, तो उसका कारण था। उसका कारण था, सूक्ष्मतम हिंसा से बाहर हो जाना, और कोई कारण नहीं था। सिर्फ एक ही कारण था कि हिंसा का एक सूक्ष्मतम जाल है जो अपने कहनेवाले कर रहे हैं। उनसे लड़ना भी मुश्किल है, क्योंकि वे हमारे हित में ही कर रहे हैं। परिवार का ही फैला हुआ बड़ा रूप समाज है, इसलिए समाज ने जितनी हिंसा की है, उसका हिसाब लगाना कठिन है!

सच तो यह है कि समाज ने करीब-करीब व्यक्ति को मार डाला! इसलिए ध्यान रहे जब आप समाज के सदस्य की हैसियत से किसी से व्यवहार करते हैं तब आप हिंसक होते हैं। अगर आप जैन की तरह किसी व्यक्ति से व्यवहार करते हैं तो आप हिंसक हैं। हिंदू की तरह व्यवहार करते हैं तो आप हिंसक हैं। मुसलमान की तरह व्यवहार करते हैं तो आप हिंसक हैं। क्योंकि अब आप व्यक्ति की तरह व्यवहार नहीं कर रहे हैं, तब आप समाज की तरह व्यवहार कर रहे हैं। और अभी व्यक्ति ही अहिंसक नहीं हो पाया तो समाज के अहिंसक होने की संभावना तो बहुत दूर है। समाज तो अहिंसक हो ही नहीं सकता, इसलिए दुनिया में जो बड़ी हिंसा है वह व्यक्तियों ने नहीं की, वह समाजों ने की।

अगर एक मुसलमान को हम कहें कि इस मंदिर में आग लगा दो तो अकेला मुसलमान, व्यक्ति की हैसियत से, पच्चीस बार सोचेगा। क्योंकि हिंसा बहुत साफ दिखाई पड़ रही है। लेकिन दस हजार मुसलमान की भीड़ में उसे खड़ा कर दें तब वह एक बार भी नहीं सोचेगा, क्योंकि दस हजार की भीड़ एक समाज है। अब हिंसा साफ न रह गई, बल्कि अब यह हो सकता है कि वह धर्म के ही हित में मंदिर में आग लगा दे। ठीक यही मस्जिद के साथ हिन्दू कर सकता है। ठीक यही सारे दुनिया के समाज एक-दूसरे के साथ कर रहे हैं।

समाज का मतलब है अपनों की भीड़। और दुनिया में तब तक हिंसा मिटानी मुश्किल है जब तक हम अपनों की भीड़ बनाने की जिद बंद नहीं करते। अपनों की भीड़ का मतलब है कि यह भीड़ सदा परायों के खिलाफ खड़ी होगी। इसलिए दुनिया के सब संगठन हिंसात्मक होते हैं। दुनिया का कोई संगठन अहिंसात्मक नहीं हो सकता। संभावना नहीं है अभी, शायद करोड़ों वर्ष लग जायँ। जब पूरा मनुष्य रूपांतरित हो जाय तो शायद कभी अहिंसात्मक लोगों का भी कोई मिलन हो सके।

अभी तो सब मिलन हिंसात्मक लोगों के हैं, चाहे परिवार ही हो। परिवार दूसरे लोगों के खिलाफ खड़ी की गई इकाई है। परिवार बायोलॉजीकल यूनिट है।

जैविक इकाई है, दूसरी जैविक इकाइयों के खिलाफ। समाज, दूसरे समाजों के खिलाफ सामाजिक इकाई है। राज्य, दूसरे राज्यों के खिलाफ राजनैतिक इकाई है। यह सब इकाइयाँ हिंसा की हैं। मनुष्य उस दिन अहिंसक होगा जिस दिन मनुष्य निपट व्यक्ति होने को राजी हो।

इसलिए महावीर को जैन नहीं कहा जा सकता और जो कहते हों वह महावीर के साथ अन्याय करते हैं। महावीर किसी समाज के हिस्से नहीं हो सकते। कृष्ण को हिन्दू नहीं कहा जा सकता और जीसस को ईसाई कहना निपट पागलपन है। यह व्यक्ति हैं, इनकी इकाई यह खुद हैं। यह किसी दूसरी इकाई के साथ जुड़ने को राजी नहीं हैं।

संन्यास समस्त इकाइयों के साथ जुड़ने से इनकार है। असल में संन्यास इस बात की खबर है कि समाज हिंसा है और समाज के साथ खड़े होने में हिंसक होना ही पड़ेगा। अपनों का चेहरा भी हिंसा का सूक्ष्मतम रूप है, इसलिए जिसे हम प्रेम कहते हैं वह भी अहिंसा नहीं बन पाता।

अपना जिसे कहते हैं वह भी 'मैं' नहीं हूँ। वह भी दूसरा है। अहिंसा उस क्षण शुरू होगी जिस दिन दूसरा नहीं है। 'दी अदर इज नॉट'। यह नहीं कि वह अपना है। वह है ही नहीं। लेकिन यह क्या बात है कि दूसरा, दूसरा दिखाई पड़ता है। होगा ही दूसरा, तभी दिखाई पड़ता है। नहीं, लेकिन जैसा दिखाई पड़ता है वैसा हो ही, ऐसा जरूरी नहीं है। अँधेरे में रस्सी भी साँप दिखाई पड़ती है। रोशनी होने से पता चलता है कि ऐसा नहीं है। खाली आँखों से देखने पर पत्थर ठोस दिखाई पड़ता है। विज्ञान की गहरी आँखों से देखने पर ठोसपन विदा हो जाता है। पत्थर सब्स्टेन्शिअल नहीं रह जाता। असल में पत्थर पत्थर ही नहीं रह जाता। पत्थर मटीरियल ही नहीं रह जाता। पत्थर पदार्थ ही नहीं रह जाता, सिर्फ एनर्जी रह जाता। नहीं, जैसा दिखाई पड़ता है वैसा ही नहीं है। जैसा दिखाई पड़ता है वह हमारे देखने की क्षमता की सिर्फ सूचना है। सिर्फ दूसरा है, इसलिए दिखाई पड़ता है। नहीं, दूसरे को दिखाई पड़ने का कारण दूसरे का होना नहीं है। दूसरे का दिखाई पड़ने का कारण बहुत अद्भुत है। उसे उमझ लेना जरूरी है। उसे बिना समझे हम हिंसा की गहराई को न समझ सकेंगे।

दूसरा इसलिए दिखाई पड़ता है कि मैं अभी नहीं हूँ। यह शायद ख्याल में नहीं आयेगा एकदम से। मैं नहीं हूँ, मुझे मेरा कोई पता नहीं है, इस मेरे न होने को, इस मेरे पता न होने को, इस मेरे आत्म अज्ञान को मैंने दूसरे का ज्ञान बना लिया। हम दूसरे को देख रहे हैं, क्योंकि हम अपने को देखना नहीं जानते। और देखना तो पड़ेगा ही। देखने की दो संभावनाएँ हैं या तो वह अदर डायरेक्टेड हो,

दूसरे की तरफ हो तीर देखने का। या इनर डायरेक्टेड हो, अंतर की ओर तीर हो। इनर एरोड या अदर एरोड हो।

दूसरे को देखें या अपने को देखें, यह देखने के दो विकल्प हैं। यह देखने के दो डायमेन्शन हैं। चूँकि हम अपने को देख ही नहीं सकते, देख ही नहीं पाते, देखा ही नहीं, हम दूसरे को ही देखते रहते हैं।

दूसरे का होना आत्म-अज्ञान से पैदा होता है। असल में यह ध्यान का डायमेन्शन है। एक युवक हॉकी के मैदान में खेल रहा है, पैर में चोट लग गई, खून बह रहा है। हजारों दर्शकों को दिखाई पड़ रहा है कि पैर से खून बह रहा है, सिर्फ उसे पता नहीं। क्या हो गया उसको? होश में-नहीं है? होश में पूरा है, क्योंकि गेंद की जरा-सी गति भी उसे दिखाई पड़ रही है। गति में बेहोश है? बेहोश बिलकुल नहीं है, क्योंकि दूसरे खिलाड़ियों का जरा-सा मुमेन्ट, जरा-सी हलचल उसकी आँख में है। बेहोश वह नहीं है, क्योंकि खुद को पूरी तरह संतुलित करके वह दौड़ रहा है। लेकिन यह पैर से खून गिर रहा है? यह दिखाई क्यों नहीं पड़ रहा है? यह उसे पता क्यों नहीं चल रहा है? उसकी सारी अटेन्शन 'अदर डायरेक्टेड' है। उसकी चेतना इस समय 'वन-डायमेन्शनल' है। वह बाहर की दिशा में लगी है। वह खेल में व्यस्त है। वह इतने जोर से व्यस्त है कि चेतना का टुकड़ा भी नहीं बचा है जो भीतर की तरफ जा सके। सब बाहर चेतना बह रही है। खेल बंद हो गया है, वह पैर पकड़ के बैठ गया और रो रहा है! और कह रहा है बहुत चोट लग गई! मुझे पता क्यों नहीं चला?...आधा घंटा वह कहाँ था? आधा घंटा भी वह था लेकिन दूसरे पर केन्द्रित था। अब लौट आया अपने पर। अब उसे पता चल रहा है पैर में चोट लग गई, दर्द है, पीड़ा है। अब उसका ध्यान अपने शरीर की तरफ गया। लेकिन गहरे में वह अभी भी अदर डायरेक्टेड है। अभी भी ध्यान उसका शरीर पर गया है। वह भी दूसरा ही है। वह भी बाहर ही है। अभी भी उसे पता चल रहा है कि पैर में दर्द हो रहा है। अभी भी उसे 'उसका' पता नहीं चल रहा है जिसे पता चल रहा है कि दर्द हो रहा है। अभी भी उसका उसे कोई पता नहीं। अभी और भीतर की यात्रा संभव है। अभी वह बीच में खड़ा है। दूसरा बाहर है, मैं भीतर हूँ, और दोनों के बीच में मेरा शरीर है। हमारी यात्रा, या तो दूसरा या अपना शरीर—इनके बीच होती रहती है। हमारी चेतना इनके बीच डोलती रहती है। या तो हम दूसरे को जानते हैं या अपने शरीर को जानते हैं, वह भी दूसरा है।

असल में अपने शरीर का मतलब केवल इतना है कि हमारे और दूसरे के बीच संबंधों के जो तीर हैं, तट हैं, जहाँ हमारी चेतना की नदी बहती रहती है, वह मेरा

शरीर और आपका शरीर इनके बीच बहती रहती है। आपसे भी मेरा मतलब आपसे नहीं है, क्योंकि जब मेरा मतलब मेरे शरीर से होता है तो आपसे मतलब सिर्फ आपके शरीर से होता है। न आपकी चेतना से मुझे कोई प्रयोजन है, न मुझे आपकी चेतना का कोई पता है। जिसे अपनी चेतना का पता नहीं, उसे दूसरे की चेतना का पता हो भी कैसे सकता है ?

मुझे मेरे शरीर का पता है और आपके शरीर का पता है। अगर ठीक से कहें तो हिंसा दो शरीरों के बीच का संबंध है। रिलेशनशिप बिटवीन टु बॉडीज़। दो शरीरों के बीच अहिंसा का कोई संबंध नहीं हो सकता। शरीरों के बीच संबंध सदा हिंसा का होगा। अच्छी हिंसा का हो सकता है, बुरी हिंसा का हो सकता है, खतरनाक हिंसा का हो सकता है, गैर-खतरनाक हिंसा का हो सकता है। लेकिन तय करना मुश्किल है कि खतरा कब गैर-खतरा हो जाता है, गैर-खतरा कब खतरा बन जाता है।

एक आदमी प्रेम से किसी को छाती से दबा रहा है। बिलकुल गैर-खतरनाक हिंसा है। असल में दूसरे के शरीर को दबाने का सुख ले रहा है, लेकिन और थोड़ा बढ़ जाय और जोर से दबाये तो घबड़ाहट शुरू हो जायेगी। छोड़े ही ना, और जोर से दबाये और श्वास घुटने लगे तो जो प्रेम था वह तत्काल घृणा बन जायगा, हिंसा बन जायेगा।

ऐसे प्रेमी हैं जिनको हम सेडिस्ट कहते हैं, जिनको हम परपीड़क कहते हैं। वह जब तक दूसरों को सता न ले तब तक उनका प्रेम पूरा नहीं होता। वैसे हम सब प्रेम में एक-दूसरे को थोड़ा सताते हैं। जिसको हम चुंबन कहते हैं, वह सताने का एक ढंग है। लेकिन धीमा, माइल्ड। हिंसा उसमें पूरी है। लेकिन थोड़ा और बढ़ जाय, काटना शुरू हो जाय, तो हिंसा थोड़ी बढ़ी। कुछ प्रेमी काटते भी हैं। लेकिन तब तक भी चलेगा, लेकिन फिर फाड़ना-चीरना शुरू हो जाय, जिन्होंने प्रेम के शास्त्र लिखे हैं उन्होंने नख-दंश भी प्रेम की एक व्यवस्था दी है। नाखून से प्रेमी को दंश पहुँचाना, वह भी प्रेम है।

हिंदुस्तान में, हिंदुस्तान के जो कामशास्त्र के ज्ञाता हैं वह कहते हैं—जब तक प्रेमी को नाखून से खुरेचें नहीं तब तक उसके भीतर प्रेम ही पैदा नहीं होता। लेकिन नाखून से खुरेचना, तो फिर एक औजार लेके खुरेचने में हर्ज क्या है ? वह बढ़ सकता है ! वह बढ़ जाता है ! क्योंकि जब नाखून से खुरेचना रोज की आदत बन जायेगी तब फिर रस खो जायेगा। फिर एक हथियार रखना पड़ेगा। जिस आदमी के नाम पर सैडीज़म शब्द बना है, वह आदमी अपने साथ एक कोड़ा भी रखता था, एक काँटा भी रखता था, पाँच अँगुलियों वाला। पत्थर भी रखता था। और

भी प्रेम के कई साधन अपने बैग में रखता था, और जब किसी को प्रेम करता तो दरवाजा लगा के ताला बंद करके बस कोड़ा निकाल लेता। पहले वह दूसरे के शरीर को पीटता। जब उसकी प्रेयसी का सारा शरीर कोड़ों से लहू-लुहान हो जाता, तब वह काँटे चुभाता।···यह सब प्रेम था।

आप कहेंगे, यह अपनावाला प्रेम नहीं है। बस यह सिर्फ थोड़ा आगे गया। डिफरेन्स इज ओनली ऑफ डिग्रीज़। इसमें कोई ज्यादा, कोई क्वालीटेटिव फर्क नहीं है, कोई गुणात्मक फर्क नहीं है, क्वान्टीटेटिव, परिमाण का मात्र फर्क है। असल में दूसरे के शरीर से हमारे जो भी संबंध हैं, वह कम या ज्यादा, हिंसा के होंगे। उससे ज्यादा कोई फर्क नहीं पड़ता।

कई प्रेमियों ने अपनी प्रेयसियों की गर्दन दबा डाली है। प्रेम के क्षणों में मार ही डाला है ! उन पे मुकद्दमे चले हैं। अदालतें नहीं समझ पायीं कि यह कैसा प्रेम है ? लेकिन अदालतों को समझना चाहिए, यह थोड़ा आगे बढ़ गया प्रेम है ! यह संबंध जरा घनिष्ठ हो गया। वैसे सभी प्रेमी एक-दूसरे की गर्दन दबाते हैं। कोई हाथ से दबाता है, कोई मन से दबाता है, कोई और-और तरकीबों से दबाता है। लेकिन, प्रेमी को दबाना हमारा ढंग रहा है। कम-ज्यादा की बात दूसरी है।

दो शरीरों के बीच में जो संबंध है वह चाहे छूरा मारने का हो और चाहे चुंबन का—आलिंगन का हो, उसमें बुनियादी फर्क नहीं है। इसमें मूलतः फर्क नहीं है। यह जान कर आपको हैरानी होगी कि दूसरे के शरीर में छूरा भोंकने में कुछ लोगों को जो आनंद आता है, क्या कभी आपने ख्याल किया कि उसका ख्याल सेक्स्युअल पेनीट्रेशन से पैदा हुआ है ? दूसरे के शरीर में छूरा भोंकने का जो रस है या दूसरे के शरीर को जो गोली मार देने का रस है, क्या वह यौन-पर्वर्शन से पैदा नहीं हुआ ?

असल में यौन का सुख भी, दूसरे के शरीर में प्रवेश का सुख है। अगर किसी आदमी का दिमाग थोड़ा विकृत हो गया तो वह प्रवेश के दूसरे रास्ते खोज सकता है। विकृत कहें या इन्वेन्टिव कहें, आविष्कारक हो गया। वह कह सकता है कि दूसरे के शरीर में यौन की दृष्टि से प्रवेश तो जानवर भी करते हैं। इसमें आदमी की क्या खूबी ? आदमी और भी तरकीब खोजता है जिनसे वह दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाय। जो गहरे में खोजते हैं वे कहते हैं कि दूसरे की हत्या का सुख परवर्टेड सेक्स है। वे कहते हैं—दूसरों को मार डालने का रस, दूसरे में प्रवेश का रस है।

कभी-कभी छोटे बच्चे, आपने ख्याल किया, अगर चलता हुआ कीड़ा देखते हैं तो उसको तोड़के देखेंगे। फूल मिलेगा तो उसको फाड़के देखेंगे। क्या आप सोच सकते हैं, किसी आदमी को दूसरे आदमी को फाड़ के देखने में वह जिज्ञासा काम कर

रही है? क्या आप कह सकते हैं कि विज्ञान भी बहुत गहरे में वायोलेन्स है? चीजों को फाड़ के देखने की चेष्टा है, लेकिन स्वीकृत। अगर आप मेंढक को मार रहे हैं बाहर, तो लोग कहेंगे बुरा कर रहे हैं। लेकिन लेबोरेटरीज के टेबल पर मेढक को काट रहे हैं तो कोई बुरा नहीं कहेगा। लेकिन हो सकता है यह काटनेवाला जो रस ले रहा है वह वही रस है।

अभी बहुत देर है कि हम वैज्ञानिक के चित्त को ठीक से समझ पायें, अन्यथा हमें पता चलेगा कि उसने अपनी हिंसा की वृत्ति को वैज्ञानिक रूप दे दिया। जो स्वीकृत रूप है। और हम हिंसा की वृत्ति को बहुत से रूप दे सकते हैं। कभी हमने यज्ञ का रूप दे दिया था। वह रिलीजीयस ढंग था हिंसा का।

किसी आदमी को किसी जानवर को काटना है। काटने में बुराई है, पाप है—तो फिर काटने को पुण्य बना लिया जाय। तो हम यज्ञ में काटें, देवता की वेदी पर काटें, तो पुण्य हो जायगा। काटने का मजा लेना है। लेकिन अब वह पागलपन हो गया। अब हम जानते हैं कि देवता की कोई वेदी नहीं है। अब हम जानते हैं कि कोई यज्ञ की वेदी नहीं है, जहाँ काटा जा सके। और अगर काटना है तो ईमानदारी से यह कहके काटो की मुझे काटना है! देवता को क्यों फँसाते हो? इसमें भगवान् को क्यों बीच में लाते हो?

रामकृष्ण की जिंदगी में एक उल्लेखनीय बात है कि एक आदमी रामकृष्ण के पास निरंतर आता था। हर वर्ष काली के उत्सव पर वह सैकड़ों बकरे कटवाता था। फिर बकरे कटने बंद हो गये। फिर उस आदमी ने जलसा मनाना बंद कर दिया। फिर दो वर्ष बीत गये। रामकृष्ण के पास वह बहुत दिन नहीं आया। फिर अचानक आया। रामकृष्ण ने कहा, क्या काली की भक्ति छोड़ दी? अब बकरे नहीं कटवाते? उसने कहा—अब दाँत ही न रहे, अब बकरे कटवाने से क्या फायदा? फिर रामकृष्ण ने कहा—क्या तुम दाँतों की वजह से बकरे कटवाते थे? तो उसने कहा, जब दाँत गिरे तब मुझे पता चला कि अब मुझे कोई रस न रहा। ऐसे मांस खाने में कठिनाई पड़ती है, काली की आड़ ले के खाना आसान हो जाता है।

लेकिन पुरानी वेदियाँ गिर गईं धर्म की। अब का धर्म विज्ञान है। इसलिए विज्ञान की वेदी पर अब हिंसा चलती है, बहुत तरह की हिंसा चलती है। विज्ञान हजार तरह के टार्चर के उपाय कर लेता है, लेकिन कोई इन्कार हम नहीं करेंगे। इसी तरह हमने धर्म की वेदी पर इनकार नहीं किया था, क्योंकि उस समय धर्म की वेदी स्वीकृत थी। अब विज्ञान की वेदी स्वीकृत है।

अगर एक वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में जायें तो बहुत हैरान हो जायेंगे। कितने चूहे मारे जा रहे हैं। कितने मेढक काटे जा रहे हैं। कितने जानवर उल्टे-सीधे

लटकाये गये हैं। कितने जानवर बेहोश डाले गये हैं। कितने जानवरों की चीर-फाड़ की जा रही है। यह सब चल रहा है। लेकिन वैज्ञानिक को बिलकुल पक्का ख्याल है कि वह हिंसा नहीं कर रहा है। उसका ख्याल है वह आदमी के लिए, खोजने के लिए, कर रहा है। बस, तब हिंसा ने अहिंसा का चेहरा ओढ़ लिया। अब चलेगा! जब आप किसी को प्रेम करते हैं तो ख्याल करना कि आपके भीतर की हिंसा तो प्रेम की शक्ल नहीं बन जाती? अगर बन जाती है तो वह खतरनाक से खतरनाक शक्ल है, क्योंकि उसका स्मरण आना बहुत मुश्किल है। हम समझते रहेंगे हम प्रेम ही कर रहे हैं। दूसरा, तब तक दूसरा है, जब तक मुझे मेरा पता नहीं है। इसे मैं हिंसा की बुनियाद कहता हूँ।

हिंसा का अर्थ है ी अदर ओरियेन्टेड कॉन्शसनेस, दूसरे से उत्पन्न हो रही चेतना। स्वयं से उत्पन्न हो रही चेतना अहिंसा बन जाती है, दूसरे से उत्पन्न हो रही चेतना हिंसा बन जाती है। लेकिन हमें दूसरे का ही पता है। हम जब भी देखते हैं, दूसरे को देखते हैं। और अगर हम कभी अपने संबंध को भी सोचते हैं, अपने बाबत भी सोचते हैं, तो हमेशा पायेंगे कि, दी अदर्स, वह दूसरे हमारी बाबत क्या सोचते हैं। उसी तरह हम भी सोचते हैं। अगर मेरी अपनी भी कोई शक्ल है, तो वह आपके द्वारा दी गई शक्ल है। इसलिए मैं सदा डरा रहूँगा। कहीं आपके मन में मेरे प्रति बुरा ख्याल न आ जाय, अन्यथा मेरी शक्ल बिगड़ जायेगी। क्योंकि मेरी अपनी तो कोई शक्ल है नहीं। अखबारों की कटिंग फाड़ के मैंने अपना चेहरा बनाया। आपकी बातें सुनके, आपकी ओपीनीयन इकट्ठी करके, मैंने अपनी प्रतिमा बनाई है। अगर उसमें से एक पीछे खिसक जाता है, कोई भक्त गाली देने लगता है, कोई अनुयायी दुश्मन हो जाता है, कोई मित्र साथ नहीं देता, कोई बेटा बाप को इनकार करने लगता है, तो बाप की प्रतिमा गिरने लगती हैं। गुरु की प्रतिमा गिरने लगती है। वह घबड़ाने लगता है कि मरा। क्योंकि मेरी तो अपनी कोई शक्ल नहीं है, मेरी अपनी कोई प्रतिमा नहीं। इन्हीं सबने मुझे एक प्रतिमा दी थी।

बाप को अपने बाप होने का पता नहीं है। किसी के बेटा होने भर का पता है। उसके बेटा होने की वजह से वह बाप है। अगर वह बेटा, बेटा होने से इनकार करने लगे तो बाप का, बाप होना मुश्किल में पड़ गया! पति को पति होने का कोई पता नहीं है, वह पत्नी के संदर्भ में पति है। अगर पत्नी जरा ही स्वतंत्रता लेने लगे तो उसका पति होना गड़बड़ हो गया। हम सब दूसरों के ऊपर निर्भर हैं। वह जो दूसरे पर निर्भर है, वह निरंतर दूसरे को देखता रहेगा।

स्वप्न में भी हम दूसरों को देखते हैं। जागने में भी दूसरों को देखते हैं। ध्यान के लिए बैठें तो भी दूसरों का ध्यान करते हैं। अगर ध्यान को भी बैठेंगे, तो

महावीर का ध्यान करेंगे, बुद्ध का ध्यान करेंगे, कृष्ण का ध्यान करेंगे। वहाँ भी 'दी अदर' मौजूद है।––जिस ध्यान में दूसरा मौजूद है, वह हिंसात्मक ध्यान है। जिस ध्यान में दूसरा आप ही रह गये, सिर्फ, वह शायद आपको अहिंसा में ले जायेगा।

दूसरा है, इसलिए दिखाई पड़ रहा। ऐसा नहीं; हम दिखाई नहीं पड़ रहे हैं तो हमारी चेतना दूसरे पर केन्द्रित हो गई। जिस दिन मैं दिखाई पड़ूँगा मुझे, उस दिन आप दूसरे की तरह दिखाई पड़ने बंद हो जायेंगे।

इसलिए महावीर जब चींटी से बच कर चल रहे हैं तो आप इस भ्रांति में मत रहना कि आप भी चींटी से बच कर चलते हैं तो वही कारण है, जो महावीर का कारण है। आप जब चींटी से बच के चलते हैं, तो चींटी से बच के चल रहे हैं। और महावीर जब चींटी से बच के चलते हैं तो अपने पर ही पैर न पड़ जाये, इसलिए बच के चल रहे हैं! इन दोनों में बुनियादी फर्क है। महावीर का बचना अहिंसा। आपका बचना, हिंसा ही है। दूसरा मौजूद है कि चींटी न मर जाये, और चींटी न मर जाय इसकी चिंता आपको क्यों है? इसकी चिंता सिर्फ इसलिए है–कहीं चींटी मरने से पाप न लग जाय। वह अदर ओरियेन्टेड कॉन्शसनेस है। कहीं चींटी के मरने से पाप न लग जाय, कहीं चींटी के मरने से नरक न जाना पड़े, कहीं चींटी के मरने से पुण्य न छिन जाय, कहीं चींटी के मरने से स्वर्ग न खो जाय! चींटी से आपका कोई प्रयोजन नहीं है, प्रयोजन सदा अपने से है। लेकिन चींटी पर ओरियेन्टेड है। दिमाग चींटी पर केन्द्रित है तो चींटी से बच रहे हैं। नहीं, आपको ऐसा नहीं लगता जैसा महावीर को लगता है। महावीर का चींटी से बचना बहुत भिन्न है। वह चींटी से बचना ही नहीं। अगर महावीर से हम पूछें कि क्यों बच रहे हैं? तो वह कहेंगे, अपने पर ही पैर कैसे रखा जा सकता है? नहीं, यह बचना नहीं है। असल में अपने पर पैर रखना असंभव है।

रामकृष्ण एक दिन गंगा पार कर रहे हैं। बैठे हैं नाव में। अचानक चिल्लाने लगते हैं जोर से, कि मत मारो, मत मारो, क्यों मुझे मारते हो? पास, आस-पास बैठे लोग कोई भी उनको नहीं मार रहे हैं। सब भक्त हैं, उनके पैर छूते हैं, पैर दबाते हैं, उनको कोई मारता तो नहीं। सब कहने लगे आप क्या कह रहे हैं? कौन आपको मार रहा है? रामकृष्ण चिल्लाये जा रहे हैं। उन्होंने पीठ उघाड़ दी। पीठ पर देखा तो कोड़े के निशान हैं। खून झलक आया है। सब बहुत घबड़ा गये। रामकृष्ण से पूछा यह क्या हो गया? किसने मारा आपको? रामकृष्ण ने कहा वह देखो, वे मुझे मार रहे हैं। उस किनारे पर मल्लाह एक आदमी को मार रहे हैं कोड़ों से, और उसकी पीठ पर जो निशान बने हैं वह रामकृष्ण की पीठ पर भी बन गये।

ठीक वही निशान। और जब तट पर उतर कर भीड़ लग गई और दोनों के निशान देखे गये तो तय करना मुश्किल हो गया कि कोड़े किसको मारे गये?–– ओरिजिनल कौन है? रामकृष्ण को चोट ज्यादा पहुँची है मल्लाह से। निशान वही हैं, चोट ज्यादा है। क्योंकि मल्लाह तो विरोध भी कर रहा होगा भीतर, रामकृष्ण ने तो पूरा स्वीकार ही कर लिया! चोट ज्यादा गहरी हो गई। लेकिन रामकृष्ण के मुख से जो शब्द निकला–'मुझे मत मारो', इसका मतलब समझते हैं? एक–शब्द है हमारे पास, सिम्पैथी, सहानुभूति। यह सहानुभूति नहीं है।

सहानुभूति हिंसक के मन में होती है। वह कहता है, मत मारो उसे। दूसरों को मत मारो। सहानुभूति का मतलब है कि मुझे दया आती है। लेकिन दया सदा दूसरे पर आती है। यह सहानुभूति नहीं है, यह समानुभूति है, इम्पेथी है। सिम्पेथी नहीं है। यहाँ रामकृष्ण यह नहीं कह रहे हैं कि 'उसे' मत मारो। रामकृष्ण कह रहे है 'मुझे' मत मारो—यहाँ दूसरा गिर गया!

असल में दूसरे से जो हमारा फासला है वह शरीर का ही फासला है, चेतना का कोई फासला नहीं। चेतना के तल पर दो नहीं हैं हम। दूसरे को बचायें तो वह अहिंसा नहीं हो सकती। हम दूसरे को बचायें, तो वह भी हिंसा ही है। जिस दिन हम ही रह जाते हैं, और बचने को कोई भी नहीं रह जाता, उस दिन अहिंसा फलित होती है।

अहिंसा की बाबत गहरी हिंसा को समझ लेना जरूरी है, कि वह जो दूसरा है उससे छुटकारा कैसे होगा। वह सात्र ठीक कहता है कि अदर इज हेल, पर ज्यादा अच्छा होगा कि सात्र के वचन में थोड़ा फर्क कर दिया जाय—वी अधर इज नाट हेल, दी अदरनेस इज हेल। दूसरा नहीं है नर्क, दूसरापन नर्क है। दूसरापन गिर जाय तो दूसरा भी दूसरा नहीं है।

महावीर की अहिंसा को नहीं समझा जा सका, क्योंकि हम हिंसकों ने महावीर की अहिंसा को हिंसा की शब्दावली दे दी। हमने कहा, दूसरे को दुःख मत दो। लेकिन ध्यान रहे जब तक दूसरा है तब तक दुःख जारी रहेगा। चाहे उसकी छाती में छुरा भोंको और चाहे उसे दूसरे की नजर से छूरा भोंको, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

क्या आपको ख्याल है आप कमरे में अकेले बैठे हो और कोई भीतर आ जाय तो आप वही नहीं रह जाते जो आप अकेले थे। क्योंकि दूसरे ने आकर हिंसा शुरू कर दी। उसकी आँख, उसकी मौजूदगी! वह आपको मार नहीं रहा, आपको चोट नहीं पहुँचा रहा है, बहुत अच्छी बातें कर रहा है। कह रहा है, आप कुशल से तो हैं; लेकिन उसका देखना···उसका आना···।

जैसे ही दूसरा भीतर आता है—ही हैज मेड यू दी अदर। जैसे ही कोई कमरे में भीतर आया उसने आपको भी दूसरा बना दिया। हिंसा शुरू हो गई। अब उसकी आँख, उसका निरीक्षण, उसका देखना, उसका बैठना, उसका होना, उसकी प्रजेन्स, हिंसा है। अब आप डर गये, क्योंकि हम सिर्फ हिंसा से डर जाते हैं। अब आप भयभीत हो गये। अब आप सँभल कर बैठ गये। आप अपने बाथरूम में और तरह के आदमी होते हैं, आप अपने बैठकखाने में और तरह के आदमी हो जाते हैं। क्योंकि बैठकखाने में हिंसा की संभावना है। बैठकखाना वह जगह है जहाँ हम दूसरे की हिंसा को झेलते हैं। जहाँ हम दूसरों का स्वागत करते हैं, जहाँ हम दूसरों को निमंत्रित करते हैं।

अहिसात्मक ढंग से हमने बैठकखाना सजाया है। इसलिए बैठकखाना हम खूब सजाते हैं कि दूसरे की हिंसा कम-से-कम हो जाय। वह सजावट दूसरे की हिंसा को कम कर दे। इसलिए बैठकखाने के चेहरे हमारे मुस्कराते होते हैं। क्योंकि मुस्कराहट दूसरे की हिंसा के खिलाफ आरक्षण है। अच्छे शब्द बोलते हैं बैठकखाने में, शिष्टाचार बरतते हैं, सभ्यता बरतते हैं, यह सब इन्तजाम है। यह सब सिक्योरिटी ऑफ सेफ्टी मेजर्स है कि दूसरे आदमी की हिसा को थोड़ी कम करो।

अगर आप भी गाली देंगे तो दूसरे की हिंसा को प्रबल होने का मौका मिलेगा। आप कहते हैं—बड़ी कृपा कि आप आये ! अतिथि तो भगवान् है ! विराजिये ! तो उस दूसरे की हिंसा को आप कम कर रहे हैं। अब उसे हिंसक होने में कठिनाई पड़ेगी। दूसरा भी आपकी हिंसा को कम कर रहा है। इसलिए जब दो आदमी पहली दफे मिलते हैं तब उनके बीच बड़ा शिष्टाचार होता है। तीन-चार घंटे के बाद शिष्टाचार गिर जाता है। तीन-चार दिन के बाद समाप्त हो जाता है। तीन-चार महीने के बाद वह एक-दूसरे को गाली देने लगते हैं। हालाँकि कहते हैं, प्रेम में दे रहे हैं, दोस्ती में दे रहे हैं !

पहले मिलते हैं तो कहते हैं, 'आप', दो-तीन महीने के बाद मिलते हैं तो कहते हैं, 'तू'। यह बात क्या हो गई तीन महीने में ? असल में अब दोनों की हिंसा सेटल्ड, व्यवस्थित हो गई। अब इतना ज्यादा सुरक्षा का इन्तजाम करना जरूरी नहीं।

दूसरे की मौजूदगी भी हिंसा बन जाती है। आपके लिए ही नहीं, आपकी मौजूदगी भी दूसरे के लिए हिंसा बन जाती है।

महावीर की जिंदगी में एक बहुत अद्भुत घटना है। महावीर संन्यास लेना चाहते थे तो उन्होंने अपनी माँ से कहा कि मैं जाऊँ संन्यास ले लूँ ? उनकी माँ ने कहा, मेरे सामने दुबारा यह बात मत कहना। जब तक मैं जिंदा हूँ तब तक संन्यास नहीं ले सकते। मुझ पर बड़ा दुःख पड़ जायेगा। महावीर लौट गये।

माँ ने न सोचा होगा, क्योंकि आम तौर से संन्यासी इतने अहिंसक नहीं होते कि इतनी जल्दी लौट जायें। अगर हिंसक वृत्ति होती महावीर की तो और जिद पकड़ जाते। कहते, नहीं, लेकर ही रहूँगा। संसार तो सब माया-मोह है ! कौन अपना ? कौन पराया ? यह सब तो झूठ है ! संन्यास लेकर रहूँगा। तुम रोकने वाली कौन हो ? अब बंधन कैसा ? लेकिन नहीं, महावीर चुपचाप लौट गये। माँ भी हैरान हुई होगी, क्योंकि जो ऐसा संन्यासी, जो एक दफे कहे संन्यास लेना चाहता हूँ और माँ कह दे, पिता कह दे, पत्नी कह दे कि नहीं मुझे बहुत दुःख होगा, और लौट जाय ! ऐसा आदमी कभी संन्यासी हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता। होने की जरूरत भी नहीं है। ऐसा आदमी संन्यासी है !

माँ मर गई ! पिता मर गये। मरघट से लौट रहे हैं महावीर ! अपने बड़े भाई से कहा कि बात हुई थी माता-पिता से तो वे बोले थे जब तक वे हैं तब तक संन्यास न लूँ, उन्हें दुःख होगा। अब संन्यास ले सकता हूँ ? घर लौट रहे हैं मरघट से। भाई ने कहा, तुम पागल हो गये हो ? माँ चली गई, पिता चले गये, हम अनाथ हो गये और तुम भी छोड़ कर चले जाओगे ? ऐसा दुःख मैं न सह सकूँगा। महावीर चुप हो गये। फिर उन्होंने दुबारा बात न उठायी संन्यास की। बड़े अजीब संन्यासी रहे होंगे। इतना भी दुःख दूसरे को पहुँचे यह भी अर्थ-हीन मालूम हुआ होगा और ऐसे मोक्ष को भी लेकर क्या करेंगे जिसमें किसी को दुःख देकर जाना पड़ता हो। वे रुक गये !

लेकिन एक अजीब घटना घटी उस घर में। ऐसी घटना शायद पृथ्वी पर और कहीं कभी भी नहीं घटी। एक अजीब घटना घटी। वर्ष-दो वर्ष में घर के लोगों को ऐसा लगने लगा कि महावीर है या नहीं, यह संदिग्ध हो गया ! ये घर में उठते थे, बैठते थे, आते थे, जाते थे, खाते थे, पीते थे, सोते थे। मगर घर के लोगों को संदेह पैदा होने लगा कि वह है या नहीं है। उनकी उपस्थिति, अनुपस्थिति जैसी हो गई। उनका होना, न होने जैसा हो गया।

असल में दूसरे के प्रति जो दूसरों का जो बोध है अगर खो जाये तो दूसरे आदमी की उपस्थिति का पता लगना मुश्किल होने लगेगा। हमें अपनी उपस्थिति का पता करवाना पड़ता है। हजार ढंग से हम करवाते हैं। (अगर घर में पति आता है तो उसकी चाल से खबर करवाता है कि आ गया। उसकी आँख से खबर करवाना चाहता है कि मैं हूँ। और मैं कौन हूँ यह साफ होना चाहिए। शिक्षक क्लास में आता है तो खबर करवा देता है। गुरु शिष्यों के बीच में आता है तो सब ढंग, सारी व्यवस्था, खबर करवा देती है कि जानो कि मैं हूँ।)

महावीर अनुपस्थित जैसे हो गये। वे न किसी को देखते, न वे किसी को दिखाई पड़ते, ऐसे हो गये। वे चुपचाप घर में रहने लगे, चुपचाप गुजरने लगे। न वे किसी को बाधा देते, न किसी की बाधा लेते। वे एक अर्थ में, जिसको जीवित मृत्यु कहें, उसमें प्रवेश कर गये। घर के लोगों ने एक दिन बैठक की, और सबने कहा अब उन्हें रोकना फिजूल है। क्योंकि वे हैं ही नहीं। रोकते किसको हो? हवा को मुट्ठी बाँध कर रोका जा सकता है? हाँ, पत्थर को रोका जा सकता है। पत्थर को मुट्ठी बाँध के रोका जा सकता है, क्योंकि पत्थर पत्थर है, बहुत मजबूती से है। पत्थर कहता है, मैं हूँ। लेकिन हवा को मुट्ठी बाँध के रोको तो जितनी थीं वह भी बाहर निकल जाती है, हवा है ही नहीं। पत्थर के अर्थों में नहीं है। इसलिए हवा को फेंक के मारा नहीं जा सकता किसी को। पत्थर को फेंक कर मारा जा सकता है।

हवा का अस्तित्व बहुत नॉनवायोलेन्ट है। पत्थर का अस्तित्व बहुत वायोलेन्ट है। महावीर हवा की तरह हो गये, तो घर के लोगों ने कहा अब बेकार मुट्ठी बाँध रहे हैं। वह आदमी जा चुका। और जितनी मुट्ठी बँधती है उतना वह आदमी बाहर होता जा रहा है। हम न रोकें। अब वह है ही नहीं। अब रोकना फिजूल ही है। रोकना भी तभी तक उचित है जब तक कोई रुकता हो, या न रुकता हो। दो में से कुछ भी करता हो तो रोकने का अर्थ है। अब वह आदमी है ही नहीं, तो घर के लोगों ने महावीर से कहा कि अब आप जाना चाहें तो जा सकते हैं।

और उन्होंने कहा, अब तो बहुत देर हो चुकी है! मैं तो जा चुका हूँ! अब मैं यहाँ नहीं हूँ।

हिंसा की पहली गहरी चोट इन दो बातों से है जो ख्याल में ले लेनी चाहिए। क्या दूसरा है? जब तक दूसरा है तब तक हिंसा जारी रहेगी। और दूसरे के कारण आप एक झूठा मैं, एक झूठा अहंकार पैदा करेंगे, जो आप नहीं हैं। लेकिन दूसरों से काम चलाने के लिए पैदा करना पड़ेगा।

अहंकार कामचलाऊ अस्तित्व है। हमें अपना कोई पता नहीं है कि मैं कौन हूँ? लेकिन हम कहते हैं कि 'मैं'। जिसे यह भी पता नहीं है कि मैं कौन हूँ वह भी कहे, मैं हूँ। यह जरा ज्यादती है, क्योंकि होने का दावा तभी किया जा सकता है जब 'कौन होने' का पता हो।

मुझे पता नहीं है कि मैं कौन हूँ? लेकिन मैं कहता हूँ कि मैं हूँ। यह मेरा 'मैं' कहाँ से आया? यह कहाँ से पैदा हुआ? अगर यह मेरे ज्ञान से पैदा हुआ है मैं, तब तो बड़े मजे की बात है, क्योंकि जिन्होंने भी स्वयं को जाना, उन्होंने मैं कहना बंद कर दिया। जिन्होंने स्वयं को पाया, उन्होंने कहा, हम तो नहीं हैं। जिन्होंने

स्वयं को पाया, उन्होंने स्वयं को खो दिया। जिन्होंने स्वयं को नहीं पाया, वह कहते हैं, मैं हूँ। यह मैं कहाँ से आया? यह आपके भीतर से नहीं आया। इसे कहना चाहिए सोश्यल बाई प्रोडेक्ट। यह समाज ने पैदा करवा दिया। वह जो दूसरे हैं, उनके साथ व्यवहार करने के लिए आपको एक शब्द खोज लेना पड़ा है कि मैं हूँ। जैसे हमने नाम खोज लिया है। बच्चा पैदा होता है बिना नाम के, नेमलेस। फिर हम उसको नाम दे देते हैं—राम, कृष्ण, कुछ भी नाम देते हैं। वह नाम बच्चे के भीतर से नहीं आता, समाज उसे दे देता है। फिर वह जिंदगी भर राम बना रहता है। वह इस एक शब्द के लिए लड़ेगा, अगर किसी ने गाली दे दी तो लड़ेगा।

रामतीर्थ अमरीका में थे। कुछ लोगों ने गालियाँ दीं तो वे हँसते हुए घर लौटे। और जब लोगों को पता चला, उनके मित्रों को कि उनको गालियाँ दी गई तो वे बहुत नाराज हुए।

रामतीर्थ को हँसते हुए देख के उन्होंने पूछा कि आप पागल तो नहीं, आप हँसते क्यों हैं? गालियाँ दी गई हैं। रामतीर्थ ने कहा मुझे कोई गाली देता तो मैं कोई जवाब देता। वे लोग राम को गाली दे रहे थे। राम से अपना क्या लेना देना है? इस नाम के बिना भी मैं हो सकता था। दूसरे नाम का भी हो सकता था। तीसरे नाम से भी हो सकता था। कोई ए. बी. सी. डी. को गाली देते, इससे लेना-देना क्या? जब वे राम को गाली दे रहे थे तब हम भी भीतर बड़े खुश हो रहे थे, कि देखो राम, कैसी गालियाँ पड़ रही हैं, आया मजा? बनोगे राम तो गाली पड़ेगी। उन्होंने नाम दिया, उन्होंने गाली दी। हम बाहर हैं। नाम भी उनका, गाली भी उनकी। वे खुद ही खेल रहे थे। कुछ लोगों का खेल होता है। कुछ लोग ताश के पत्ते अकेले खेलते हैं। दोनों तरफ से चाल चलते हैं। होना चाहिए उन्हें पागल-खाने में, लेकिन होते बहुत बुद्धिमान् लोग हैं। समाज दोहरी चाल चलता है—नाम भी देता है, गाली भी देता है। प्रसंशा भी देता है, निंदा भी देता है। आदर भी देता है, अपमान भी देता है। दोहरी चाल है समाज की और उस दोहरी चाल में आदमी बुरी तरह फँसता है। वह दूसरा भी झूठा है और यह मैं? यह मेरा 'मैं' भी झूठ है। यह दो झूठ एक साथ जिन्दा रहते हैं। जिस दिन दूसरा गिरता है, उसी दिन मैं गिर जाता है। इधर मैं गिरता, उधर दूसरा गिर जाता है।

मैं और तू के गिर जाने से जो शेष रह जाता वह अहिंसा है। तो जब तक हम कह सकते हैं, तू, तब तक हिंसा जारी रहेगी। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप 'मैं' शब्द का उपयोग नहीं करेंगे। करना ही पड़ेगा। महावीर भी करते हैं लेकिन तब वह शब्द है, भाषा का खेल है। जब वह अस्तित्व नहीं है। तब 'मैं'

सिर्फ एक शब्द है, जो उपयोगी है। बहुत से शब्द उपयोगी हैं, लेकिन अस्तित्व में नहीं हैं, अस्तित्व से उनका कोई संबंध नहीं है।

ध्यान रहे, इस मैं और तू के बीच जो उपद्रव पैदा हुआ है, वह हिंसा है। मैं और तू के बीच पैदा हुआ उपद्रव होगा ही। दो झूठ खड़े हैं। दो झूठों के बीच जो भी होगा, वह उपद्रव ही होगा। हाँ, यह उपद्रव कभी प्रीतिपूर्ण हो सकता है, कभी अप्रीतिपूर्ण हो सकता है। कभी यह उपद्रव प्रेम बन सकता है, यह बात दूसरी है। लेकिन जब तक 'मैं हूँ' और जब तक 'तू है' तब तक हिंसा है। यह हिंसा का पहला सूक्ष्मतम रूप है। फिर हिंसा के बहुत रूप हैं जो इससे फैलते चले जाते हैं। उनको तो ऐसे ही गिना दूँ, क्योंकि ओरिजनल सोर्स हमारे ख्याल में आ जाय। फिर तो अनंत हिंसाएँ हैं। इनका सारा हिसाब लगाना तो बहुत मुश्किल है।

अहिंसा तो एक है, हिंसाएँ अनंत हैं। हिंसा मल्टी-डायमेंशनल है। लेकिन निकलती है एक ही झरने से वह। मैं और तू का झरना, या कहें आत्म-अज्ञान का झरना। महावीर से अगर कोई पूछे, अहिंसा क्या है तो वे कहेंगे आत्मज्ञान। हिंसा क्या है? तो वे कहेंगे आत्म-अज्ञान।

अपने को ही न जानना हिंसा है। यह बड़ी अजीब बात है। हम तो समझते हैं कि दूसरों को दुःख न देना हिंसा है। हम तो समझते हैं दूसरों को सुख देना अहिंसा है। लेकिन ध्यान रहे, दूसरे को चाहे सुख दो, चाहे दुःख दो, हर हालत में दुःख ही पहुँचता है। देने की सब आकांक्षाएँ व्यर्थ हो जाती हैं, क्योंकि दूसरे को सुख दिया ही नहीं जा सकता। सुख सिर्फ स्वयं को दिया जाता है। जिस दिन आप आप नहीं रह जाते, दूसरा नहीं रह जाता, उस दिन ही आपकी तरफ मुझसे सुख बह सकता है। और जब तक आपको सुख देने की कोशिश मैं करता हूँ, तब तक दुःख ही देता हूँ, लेकिन हमें ख्याल में नहीं आता।

कभी आपने सोचा कि जिन-जिन को आपने सुख दिया, उन-उनको दुःख पहुँचा! लोग रोज शिकायत करते हैं कि हम जिसको भी सुख देते हैं वह हमें सुख नहीं लौटाता। आप सुख देते होंगे, पहुँचता दुःख है। वह भी सुख देता है, पहुँचता दुःख है। बड़ी गलतफहमी होती है।

जो हम देते हैं वह पहुँचता नहीं, कभी नहीं पहुँचता। इसलिए जितने हम उन पर नाराज होते हैं जो हमें सुख देते हैं, उतने हम उन पर नाराज नहीं होते जो हमें दुःख देते हैं। क्योंकि कम-से-कम लेन-देन साफ-साफ होती है, कि वह दुःख दे रहा है। लेकिन जो हमें सुख देने की बात करते हैं और जब दुःख पहुँचता है —जैसे मैं किसी को प्रेम करने लगूँ और कल उससे विवाह कर लूँ तो मैं सब सुख देने की कोशिश करूँगा और दुःख पहुँचेगा।

किस पति ने किस पत्नी को कब सुख दिया? किस पत्नी ने किस पति को कब सुख दिया? लेकिन शायद मैं समझूँगा कि मैं सुख पहुँचा रहा हूँ और दूसरा दुःख पहुँचा रहा है, वहीं भूल हो रही है। दूसरे को भी, वह सोच रहा है, मैं सुख पहुँचा रहा हूँ, दूसरा दुःख पहुँचा रहा है।

मनुष्य जीवन का सारा अंतर्द्वन्द्व, सुख पहुँचाने की कोशिश और दुःख पहुँचाने की स्थिति से पैदा होता है। पहुँचाते सभी सुख हैं, पहुँचता सदा दुःख है। असल में दूसरे को हम सुख पहुँचा ही नहीं सकते, दूसरे के साथ हम अहिंसक हो ही नहीं सकते। यह इम्पोसीबिलिटी है। इसका कोई उपाय नहीं है कि हम दूसरे के साथ अहिंसक हो सकें।

हम दूसरे को फूल भी फेंककर मारेंगे, जब वह लगेगा, तो पत्थर हो जायेगा।

एक फकीर को सूली दी जा रही थी। लोग उस पर पत्थर फेंक रहे थे, अंगारे फेंक रहे थे। मनसूर लटका था सूली पर और लोग फेंक रहे थे। एक फकीर जुन्नेद नाम का उनमें मौजूद था। वह भी एक सूफी संत था। भीड़ बड़ी थी और सभी कुछ-न-कुछ फक रहे थे। जुन्नेद के मन में दुःख तो था कि मनसूर की हत्या ठीक नहीं हो रही है, लेकिन इतनी हिम्मत भी न थी कि कह सके कि यह ठीक नहीं हो रहा है। सब लोग कुछ फेंक रहे थे। जुन्नेद कुछ न फेंके तो शायद लोग उसको भी मारें कि तुम ऐसे क्यों खड़े हो? तो जुन्नेद ने एक फूल फेंककर मारा। सोचा उसने मनसूर को लगेगा भी नहीं, मनसूर समझेगा कि फूल फेंका, भीड़ भी समझेगी कुछ फेंका और खाली हाथ नहीं खड़ा रहा। लेकिन लोगों के पत्थर तो मनसूर झेल गया, जुन्नेद का फूल न झेल सका।

जुन्नेद का फूल लगते ही मनसूर तो धार-धार रोने लगा। अब तक हँस रहा था वह। जुन्नेद तो घबड़ा गया। जुन्नेद ने कहा, मैंने फूल फेंक कर मारा और आप रोते हो और इतने पत्थर खा गये? मनसूर ने कहा, फूल भी फेंककर मारा न? मारने से दुःख पहुँचता है। कोई पत्थर फेंके, सीधा लेन-देन है। लेकिन फूल मारते भी हो और छिपाते भी हो।

मारना भी चाहते हो और बताना भी नहीं चाहते। चोट गहरी पहुँच गयी जुन्नेद। और यह तो ना-समझ थे, इन्हें माफ किया जा सकता था, पर तुम भी मारते हो! जुन्नेद ने कहा कि मैंने तो फूल फेंका। मनसूर ने कहा, कुछ भी फेंको, चोट लग जाती है! असल में फेंकते ही हम तब हैं, जब दूसरा है, नहीं तो हम फेंकेंगे कहाँ?

ध्यान रहे भगवान् की मूर्ति पर चढ़ाये गये फूल भी हिंसा हो जाती है। क्योंकि हम दूसरे को स्वीकार कर रहे हैं। भक्त वह नहीं है जिसने भगवान् की

मूर्ति पर फूल चढ़ाये। भक्त वह है जो खोजने निकला और जिसने भगवान् के सिवाय कुछ भी नहीं पाया।

फूल में भी उसको पाया और पत्थर में भी उसको पाया। चढ़ाने वाले में भी उसे पाया, चढ़ने वाले में भी उसे पाया और वह पूछने लगा कि किस को चढ़ाऊँ और किसको चढ़ाऊँ? और किसके लिए चढ़ाऊँ? और कैसे चढ़ाऊँ? कौन चढ़ाये?

जब कोई अहिंसा को उपलब्ध होता है तो दूसरा मिट जाता है। और दूसरा कब मिटता है? जब कोई स्वयं को जानता है तब दूसरा मिटता है। उसके पहले नहीं मिटता। फिर हमारी बहुत तरह की हिंसा पैदा होती चली जाती है। हम चलते हैं तो हिंसा है, हम उठते हैं तो हिंसा है, हम बैठते हैं तो हिंसा है, हम बोलते हैं तो हिंसा है, हम देखते हैं तो हिंसा है।

इसलिए इस ख्याल में कोई न पड़े कि अगर हमने बहुत स्थूल हिंसाएँ रोक लीं तो कोई फर्क हो जायेगा। कोई आदमी मांसाहार न करे, अच्छा है न करे, लेकिन इस भ्रम में न पड़े वह, कि अहिंसा हो गयी। इतना ही कहें कि थोड़ी सी हिंसा रुकी। लेकिन ध्यान रहे, यह हिंसा किसी दूसरी जगह से निकलना शुरू न हो जायगी। यह निकलेगी, यह मार्ग खोजेगी। क्योंकि हिंसा मिटी नहीं है, वह मिट नहीं सकती, इस भाँति नहीं मिट सकती।

अगर मांस खाना छोड़ दिया है तो अक्सर आप देखेंगे कि मांसाहारी जितना भला आदमी मालूम पड़ेगा, गैर-मांसाहारी उतना भला आदमी नहीं मालूम पड़ेगा। यह अजीब-सी बात है, बड़ी दुःखद है। साधारणतः जो शराब पी लेता है, सिगरेट पी लेता है, होटल में खाना खा लेता है, वह थोड़ा-सा विनम्र आदमी मालूम पड़ेगा। जो सिगरेट नहीं पीता, मांस नहीं खाता, होटल में नहीं खाता, ऐसा जीता है, ऐसा नहीं जीता, वह अविनम्र और कठोर होता चला जायेगा।

जो हिंसा उसकी निकलती नहीं है वह इकट्ठी होकर उसके भीतर संग्रहीत होने लगती है। इसलिए आमतौर से जिनको हम अच्छे आदमी कहते हैं वह अच्छे सिद्ध नहीं होते। दुर्घटना है यह। बुरा आदमी कई बार बहुत अच्छा सिद्ध होता है और अच्छे आदमी अक्सर बुरे सिद्ध होते हैं। अच्छे आदमी के साथ दोस्ती तो मुश्किल ही है, बुरे आदमी के साथ ही दोस्ती हो सकती है। दोस्ती के लिए थोड़ा-सा विनम्र दिल चाहिए--अच्छे आदमी के पास वह नहीं रह जाता। इसलिए महात्माओं से दोस्ती बहुत मुश्किल है। महात्माओं की भी मुश्किल है, औरों की तो बहुत मुश्किल ही है।

आप महात्मा के अनुयायी हो सकते हैं या दुश्मन हो सकते हैं, दोस्त नहीं हो सकते। अच्छे आदमी के पास दोस्ती खो जाती है, कठोर हो जाता है।

हाथ फैलाता है जो वह दोस्ती के लिए वह खत्म हो जाता है। अक्सर जो समाज जिसको हम कहें सहज जीते हैं, बुरे-भले का बहुत फर्क नहीं करते, वहाँ बड़ी मात्रा में भले आदमी मिल जाते हैं। जो समाज में असहज जीते हैं, बुरे-भले का बहुत फर्क करते हैं, वहाँ अच्छा आदमी खोजना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि बुराई बाहर से तो रुक जाती है और उसके भीतर इकट्ठी होती जाती है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि ऋषि-मुनियों से ज्यादा क्रोधी आदमी को खोजना कठिन हो जाता है। दुर्वासा ऋषि-मुनि में ही पैदा हो सकता है। कहीं और नहीं पैदा हो सकता है।

इधर मैं निरन्तर सोचता रहा तो मेरे ख्याल में आया कि अगर हिटलर थोड़ी सिगरेट पीता, थोड़ा मांस खा लेता, थोड़ा बे-वक्त जग जाता, थोड़ा जाकर कहीं नृत्यगृह में नाच कर लेता, तो शायद दुनिया में करोड़ों आदमी मरने से बच जाते।

लेकिन हिटलर सिगरेट नहीं पीता, मांस नहीं खाता, चाय नहीं पीता। पक्का शाकाहारी, प्युरीटन, शुद्धतावादी है। नियम से सोता, नियम से उठता ब्रह्म-मुहूर्त में। सख्त नीतिवादी आदमी, चारों तरफ से सख्त। सारी शक्ति इकट्ठी हो गयी। कई बार ऐसा लगता है कि थोड़े अच्छे आदमी भी थोड़े से, जिसको इनोसेन्ट-नॉनसेन्स कहें, निर्दोष-बेवकूफियाँ कहें, ऐसे थोड़े से काम करें तो विनम्र और सरल हो जाते हैं।

लेकिन अच्छे आदमी सदा ही अच्छा करने की क्यों चेष्टा करते हैं? अच्छे होना बहुत दूसरी बात है, अच्छा करना बहुत दूसरी बात है। अच्छा करने से कोई कभी अच्छा नहीं होता। अच्छा होने से अच्छा करना निकल सकता है। वह बहुत दूसरी बात है, लेकिन हम सदा उल्टा पकड़ते हैं।

हमने देखा महावीर को कि महावीर मांस नहीं खाते तो हमने सोचा हम भी मांस नहीं खायेंगे तो महावीर जैसे अच्छे हो जायेंगे। भूल हो गयी, तर्क गलत हो गया। कहीं गणित चूक गया। महावीर कुछ हो गये, इसलिए मांस खाना असंभव है। मांस न खाने से कोई महावीर नहीं हो सकता। और अगर मांस न खाने से कोई महावीर हो सके तो महावीर होना दो कौड़ी का हो गया। जितनी कीमत मांस की, उतनी ही कीमत महावीर की हो गयी। उससे ज्यादा न रही। इतना सस्ता मामला नहीं है। धर्म इतना सस्ता नहीं है कि हम यह नहीं खायेंगे तो हम धार्मिक हो जायेंगे; कि हम यह न पियेंगे तो धार्मिक हो जायेंगे; कि हम रात में पानी न पियेंगे तो धार्मिक हो जायेंगे।

मैं नहीं कहता हूँ कि आप पियें। ध्यान रहे, मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि रात में पानी पियें। पीने से भी धार्मिक नहीं हो जायेंगे, नहीं पीते हैं, भला है;

लेकिन इस भूल में मत पड़ना कि धार्मिक हो गये। अहिंसक हो गये। वह बड़ा खतरा है, बहुत सस्ता काम किया और बहुत मँहगा विश्वास पैदा हो गया। न कुछ किया तो सब कुछ पाने का ख्याल पैदा हो गया। कंकर-पत्थर गिने और समझा कि हीरे-जवाहरात हाथ आ गये। यह भूल हो गयी अहिंसा के साथ। यह भूल बहुत गहरी हो गयी। क्योंकि अहिंसक को हमने पकड़ा है आचरण से, गहरे से नहीं, अध्यात्म से नहीं। आचरण से अहिंसा पकड़ी जायेगी तो खतरनाक है और जब आचरण से कोई अहिंसा को पकड़ता है, तब सूक्ष्म रूप से हिंसक होता चला जाता है।

इस संबंध में एक बात कह कर अपनी बात पूरी करूँ। जब अहिंसा सूक्ष्म बनती है तो पहचान के बाहर हो जाती है। मैं आपको कई तरह से दबा सकता हूँ। एक दबाना हिटलर का भी है, आपकी छाती पर छुरी रख देगा। एक दबाना महात्मा का भी होता है, आपकी छाती पर छुरी नहीं रखेगा, अपनी छाती पर छुरी रख लेगा।

एक दबाना मेरा यह हो सकता है कि मार डालूँगा अगर मेरी बात न मानी। और एक दबाना यह हो सकता है कि मर जाऊँगा अगर मेरी बात न मानी। लेकिन दबाना जारी है। अच्छे लोग अच्छे ढंग से दबाते हैं, बुरे लोग बुरे ढंग से दबाते हैं। लेकिन बुरे लोग फिर भी सिनसियर हैं, सीधे हैं, बात जानते हैं कि हाथ में छुरी है। अच्छे आदमी जानते हैं कि हाथ में माला है। लेकिन माला से भी फाँसी लगायी जा सकती है इसका बोध नहीं होता। और अगर हिंसा सूक्ष्म हो तो दो रूप लेती है।

एक तो दूसरे की तरफ अहिंसा का चेहरा बनाती है, हिंसा का काम करती है; और दूसरी तरफ अगर हिंसा और भी सूक्ष्म हो जाय तो अपने को भी सताना शरू कर देती है। मजा यह है कि अहिंसा दूसरे को भी नहीं सता सकती, हिंसा अंततः अपने को भी सता सकती है। तो हिंसा अंत में सेल्फ-टार्चर भी बन जाती है।

जैसे मैंने कहा सेडिस्ट दो तरह के लोग होते हैं। आम तौर से दो ही तरह के लोग होते हैं, तीसरी तरह का आदमी कभी-कभी होता है। कभी कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, कोई जीसस कभी। आम तौर से दो तरह के आदमी होते हैं, दूसरों को सताने वाले लोग और अपने को सताने वाले लोग—परपीड़क और आत्म-पीड़क। मैंने कहा एक आदमी की बाबत कि वह प्रेम करेगा तो दूसरे को सतायेगा। वैसा एक आदमी हुआ मैं सोचा। वह अपने को ही सतायेगा। जब तक सुबह से उठ कर अपने को पाँच-पचास कोड़े न मार ले तब तक दिन में उसको ताजगी

न आयेगी। तो दुनिया में कोड़े मारने वाले संन्यासी हुए हैं, काँटों पर लेटने वाले संन्यासी हुए हैं, काँटों के जूते पहनने वाले संन्यासी हुए हैं, घाव बनाने वाले संन्यासी हुए हैं। ये किस तरह के लोग हैं? यह संन्यास हुआ? यह धर्म हुआ?

एक आदमी दूसरे को भूखा मारे तो हम कहेंगे अधार्मिक और एक आदमी अपने को भूखा मारे तो हम जुलूस निकालेंगे! बड़े अधर्म की बात है। क्या दूसरे को सताना अधार्मिकता और अपने को सताना धार्मिकता हो सकता है? सताना अगर अधार्मिक है तो इससे क्या फर्क पड़ता है कि किसको सताया? हाँ, दूसरे को सताते तो दूसरा रक्षा भी कर सकता था, अपने को सतायेंगे तो रक्षा का भी उपाय नहीं। अपने को सताना बहुत आसान है, दूसरे को सताने में हजार तरह की कठिनाइयाँ हैं—समाज है, कानून है, पुलिस है, अदालत है। अभी तक अपने को सताने के खिलाफ न कोई कानून है, न कोई पुलिस, न कोई अदालत। होनी तो चाहिए, क्योंकि कुछ दुष्ट अपने को सताते हैं। जिस दिन अच्छी दुनिया होगी उस दिन उसके लिए भी अदालत होगी। और ध्यान रहे; जो अपने को सताता है, वह सब तरह से दूसरे को सतायेगा ही। क्योंकि जो अपने को नहीं छोड़ता है, वह दूसरे को कैसे छोड़ सकता है? यह असंभव है। अगर मैंने अपने को भूखा रख कर जुलूस निकलवा लिया तो ध्यान रखिये मैं आपको भी भूखा रखवाने के सब उपाय करूँगा और जब तक आपका जुलूस निकल जाय तब तक चैन न लूँगा। हिंसा और गहरी और सूक्ष्म हो जाती है तो आत्म-पीड़क बन जाती है।

महावीर की मूर्ति देखी? यह आदमी मालूम पड़ता है कि इसने खुद को सताया होगा? इस आदमी का शरीर देखा? इस आदमी की शान देखी? इस आदमी का सौंदर्य देखा? ऐसा लगता है कि उसने खुद को सताया होगा? कथाएँ झूठी होंगी या फिर यह मूर्ति झूठी! इस आदमी ने अपने को सताया नहीं है। महावीर जैसी सुन्दर प्रतिमा, मैं समझता हूँ, किसी की भी नहीं है। मैं तो समझता हूँ कि महावीर के नग्न हो जाने में उनका सौन्दर्य भी कारण है। कुरूप आदमी नग्न नहीं हो सकता। वह वस्त्र को सदा सँभाल के रखेगा, क्योंकि वस्त्रों में सौन्दर्य को कोई नहीं छिपाता। वस्त्रों में सिर्फ कुरूपता छिपायी जाती है।

जो-जो अंग सुन्दर होते हैं वह तो हम वस्त्र के बाहर कर देते हैं। जो-जो अंग कुरूप होते हैं, उन्हें हम वस्त्रों में छिपा लेते हैं। महावीर सर्वांग-सुन्दर मालूम होते हैं। ऐसे अनुपात वाला शरीर मुश्किल से दिखाई पड़ता है। इस आदमी की जितनी सताने की कथाएँ हैं, मुझे नहीं लगतीं, इस आदमी पर घटीं। अन्यथा हमें मूर्ति बदल देनी चाहिए। यह मूर्ति सच्ची मालूम नहीं होती। मैं मानता हूँ कि मूर्ति सच्ची है, कथाएँ झूठी हैं। असल में कथाएँ मैसोचिस्ट ने लिखी हैं।

कथाएँ उन्होंने लिखी हैं जो स्वयं को सताने के लिए उत्प्रेरित हैं, वे कथाएँ ढाल रहे हैं। वे महावीर के आनन्द को भी दुःख बना रहे हैं। वे महावीर की मौज को भी त्याग बना रहे हैं। वे महावीर के भोग को भी, परम भोग को, त्याग की व्याख्या दे रहे हैं। मेरी दृष्टि में महावीर महल को छोड़ते हैं, क्योंकि बड़ा महल उन्हें दिखाई पड़ गया। उनकी दृष्टि में वे सिर्फ महल छोड़ते हैं, कोई बड़ा महल दिखाई नहीं पड़ता। मैं जानता हूँ कि महावीर सोने को छोड़ते हैं, क्योंकि वह मिट्टी हो गया और परम सुवर्ण उपलब्ध हो गया।

अगर महावीर किसी दिन खाना नहीं खाते तो वह अनशन नहीं है, उपवास है। अनशन का मतलब है भूखे मरना। उपवास का मतलब है इतने आनन्द में होना कि भूख का पता भी न चले। वह बात ही और है। उपवास शब्द आप सुनते हैं। उपवास शब्द में रोटी, भोजन, खाना-पीना कुछ भी नहीं आता। उस शब्द में ही नहीं है वह। उपवास का मतलब है भीतर-भीतर, और पास और पास होना। टु बी नीयरर टु वन सेल्फ। उपवास का इतना ही मतलब है, अपने पास होना। जब कोई आदमी बहुत गहरे में, भीतर अपने पास होता है, तो शरीर के पास नहीं हो पाता; इसलिए शरीर की भूख-प्यास का उसे स्मरण नहीं होता। शरीर के पास होंगे तभी तो ख्याल आयेगा।

जब ध्यान बहुत भीतर है तो शरीर से ध्यान चूक जाता है। उपवास का मतलब है, ध्यान की अन्तर्यात्रा। उपवास अनशन नहीं है, लेकिन मैसोचिस्ट उपवास को अनशन बना देगा। वह कहेगा बिना भूखे रहे आत्मा नहीं मिल सकती। भूखे रहने से आत्मा का मिलने का क्या संबंध हो सकता है?

आत्मा भूख को प्रेम करती है? भूखे रहने से आत्मा का मिलने से कोई संबंध नहीं है। हाँ, आत्मा के मिलने की घड़ी भूखा रहना हो सकता है। जिस दिन आप आनंदित होते हैं, उस दिन भोजन ज्यादा नहीं कर पाते।

अगर कोई प्रियजन आ जाय और आप बहुत आनन्दित हों तो भोजन कम हो जायेगा। आनन्द इतना भर देता है, इट इज सो फुल-फिलिंग, कि भीतर कुछ खाली नहीं रह जाता। महावीर ने जिस आनन्द को जाना है वह तो परम आनन्द है, वह इतना इतना भर देता है भीतर, कि जगह खाली नहीं रह जाती।

दुःखी आदमी ज्यादा खाना खाते हैं। जिस दिन आप दुःख में होंगे उस दिन आप ज्यादा खाना खा जायेंगे, क्योंकि आप इतने खाली होंगे। तो जो आदमी जितना दुःखी है, उतना ज्यादा खाना खाने लगेगा।

असल में बचपन में बच्चे को पहली बार ही यह बोध हो जाता है कि सुख और खाने में कोई संबंध है। माँ जब बच्चे को पूरा प्रेम करती है तो दूध भी देती

है और उस प्रेम में उसे आनन्द भी मिलता है। जिस बच्चे को पक्का आश्वासन है कि जब उसे दूध चाहिए मिल जायेगा, वह बच्चा ज्यादा दूध नहीं पीता। माँ परेशान रहती है कि ज्यादा पिलाये। वह ज्यादा नहीं पीता, क्योंकि वह जानता है जब भी चाहिए मिल जायेगा। लेकिन अगर नर्स हो दूध पिलाने वाली, और कई माताएँ नर्सिस हैं, उन्होंने बच्चे को पेट में लिया, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता!

अगर माँ इससे दुःखी होती और बच्चे को जबरदस्ती दूध से अलग करती है तो बच्चा ज्यादा पीने लगेगा, क्योंकि भविष्य का भरोसा नहीं है। बच्चा चिन्तित है, एंक्जाइटी से भरा है। जहाँ जितनी ज्यादा चिंता होगी वहाँ उतना ही भोजन ज्यादा शुरू हो जायेगा। चिन्तित लोग ज्यादा खाना खाने लगते हैं।

चिन्तित लोग खाली हो जाते हैं। चिन्ता एक तरह की एम्पटीनेस है। वह भीतर सब खाली कर देती है। आदमी ज्यादा खाने लगता है। ज्यादा खाना सिर्फ इस बात की सूचना है कि यह आदमी दुःखी है। कम खाना सिर्फ इस बात की सूचना है कि यह आदमी सुखी है।

आनन्द तो और आगे की बात है। जब कोई आनन्द से भर जाता है तो महीनों भी बीत सकते हैं। और ध्यान रहे महावीर के महीनों उपवास में बीते। महीनों उन्होंने भोजन नहीं किया, ऐसा नहीं कहूँगा,—भोजन नहीं कर पाये, ऐसा कहूँगा। ऐसे भरे हुए थे! महीना इतना आनन्द से बीता हो तो महावीर के शरीर पर तो नुकसान होना ही चाहिए भोजन के न होने का। शरीर को नुकसान भोजन के न होने से इतना नहीं पहुँचता, जितना नहीं मिला इससे पहुँचता है। गहरे में शरीर को जो नुकसान पहुँचते हैं वह मनोदशाओं से पहुँचते हैं।

कुछ दिनों पहले बंगाल में एक महिला थी। प्यारी बाई थी, जिसने तीस साल, दूरे तीस साल भोजन नहीं किया और शरीर को कोई नुकसान ही नहीं पहुँचा। और यह महावीर की बात तो पुरानी हो गयी, इसलिए इसकी मेडिकल परीक्षा का कोई उपाय नहीं है। लेकिन प्यारी बाई के सारे का सारे मेडिकल परीक्षण हुए। तीस साल उसने कोई भोजन नहीं किया। उसकी सारी अँतड़ियाँ सिकुड़ कर सूख गयीं। लेकिन उसके स्वास्थ्य में कोई फर्क नहीं पहुँचा। क्या हुआ? एक चमत्कार हुआ! इसे क्या हो गया? मेडिकल साइन्स को समझना मुश्किल हो गया, इसे क्या हुआ।

असल में वह इतनी आनन्दित थी कि हम सोच भी नहीं सकते कि आनन्द भी भोजन बन सकता है। हम सिर्फ एक ही बात जानते हैं कि भोजन आनन्द बनता है। दूसरा छोर हमें पता नहीं कि आनन्द भी भोजन बन सकता है। दूसरा छोर भी है। सब चीजें कनवर्टीबल हैं। अगर पानी बरफ बन सकता है

तो बरफ पानी बन सकता है। अगर एनर्जी मेटर बन सकती है तो मेटर एनर्जी बन सकता है।

अगर भोजन आनन्द बनता है तो आनन्द भोजन बन सकता है। बना है। प्यारी बाई तीस साल तक भूखे रह कर कह गयी कि भूखे महावीर ने अगर बारह साल में कुल ३६५ दिन भोजन किया होगा तो यह अनशन नहीं था, अन्यथा शरीर चला गया होता। आनन्द भोजन बन गया।

अभी यूरोप में एक महिला थी। उस पर तो और भी प्रयोग हो सके। वह असाधारण रूप से स्वस्थ भी। वर्षों उसने भोजन नहीं किया। क्या हुआ? वह कृष्ण की दीवानी नहीं थी। वह क्राइस्ट की दीवानी थी। और प्यारी बाई से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण घटना उसकी जिन्दगी में थी। हर शुक्रवार को, जब क्राइस्ट को सूली लगी, तब उसके दोनों हाथों से खून बहने लगता था बिना किसी चोट के। इतनी एक हो गयी थी, एम्पथी में कि वह ऐसा नहीं बोलती थी कि जीसस ने कहा, वह ऐसा बोलती थी कि मैंने कहा था—"जब मुझे सूली लगी थी तो मैंने कहा था इन सबको माफ कर दो, क्योंकि यह निर्दोष हैं और नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।" तो ठीक शुक्रवार के दिन, जिस दिन जीसस को सूली लगी, उसके हाथ फैल जाते, आँखें बन्द हो जातीं और उसकी हाथ की साबित गद्दियों में से खून गिरना शुरू हो जाता। शुक्रवार की रात घाव विदा हो जाते। खून बन्द हो जाता। दूसरे दिन हाथ बिलकुल ठीक हो जाते। सैकड़ों बार उसके हाथ से खून बहा, और भोजन उसका बन्द!

एक बहुत कीमती बात आपसे कहना चाहता हूँ। वह यह कि कुछ सूत्र हैं, कुछ राज हैं जिनके द्वारा आनन्द भी भोजन बन जाता है। लेकिन वह उपवास है, वह अनशन नहीं है।

अहिंसा न तो किसी और को सताती, न स्वयं को सताती है। अहिंसा सताती ही नहीं। हिंसा ही सताती है। हिंसा के गृहस्थ रूप हैं, हिंसा के संन्यस्त रूप हैं, हिंसा के अच्छे रूप हैं, बुरे रूप हैं। और अगर हम दोनों से सजग हो जायँ तो शायद अहिंसा की खोज हो सकती है।

चार दिन तक एक-एक सूत्र की खोज आपके साथ करना चाहूँगा और पाँचवें दिन अंतिम दिन इन चारों सूत्रों में कैसे उतरा जा सकता है उसकी बात कहूँगा। अहिंसा अपरिग्रह, अचोरी, अकाम, यह चार परिणाम हैं और पाँचवाँ सूत्र अप्रमाद, अवेयरनेस—इन परिणामों तक पहुँचने का मार्ग है।

जो मिलेगा, वह है सत्य। जो खिलेगा जीवन में, जिसकी फ्लावरिंग होगी, वह है ब्रह्मचर्य।

•

अ प रि ग्र ह

•

दूसरा महाव्रत

दूसरे महाव्रत 'अपरिग्रह' को समझने के लिए परिग्रह को समझना आवश्यक है। बड़ी भ्रांतियाँ हैं परिग्रह के संबंध में। परिग्रह का अर्थ होता है वस्तुओं पर मालकियत की भावना। परिग्रह का अर्थ होता है पजेसिवनेस। कितनी वस्तुएँ हैं आपके पास, इससे कुछ तय नहीं होता। आप किस दृष्टि से उन वस्तुओं का व्यवहार करते हैं, आप किस भाँति उन वस्तुओं से संबंधित हैं, सब कुछ इस पर निर्भर है। वस्तुओं के ही नहीं, हम व्यक्तियों के प्रति भी परिग्रही, पजेसिव होते हैं।

हिंसा के संबंध में मैंने कुछ बातें कल आपसे कहीं। परिग्रह--पजेसिवनेस, हिंसा का ही एक आयाम, एक डायमेंशन है। सिर्फ हिंसक व्यक्ति ही पजेसिव, परिग्रही होता है। जैसे ही मैं किसी व्यक्ति पर, किसी वस्तु पर मालकियत की घोषणा करता हूँ, वैसे ही मैं गहरी हिंसा में उतर जाता हूँ। बिना हिंसक हुए मालिक होना असंभव है। मालकियत हिंसा है। वस्तुओं की मालकियत तो ठीक ही है, व्यक्तियों की मालकियत भी हम रखते हैं। पति मालिक है पत्नी का। पति शब्द का अर्थ ही मालिक होता है, दी ओनर। पति को हम स्वामी कहते हैं। स्वामी का मतलब होता है मालिक। परिग्रह का अर्थ है स्वामित्व की आकांक्षा। पिता बेटे का मालिक हो सकता है, गुरु शिष्य का मालिक हो सकता है। जहाँ भी मालकियत है वहाँ परिग्रह है, और जहाँ भी परिग्रह है वहाँ संबंध हिंसात्मक हो जाते हैं। क्योंकि बिना किसी की हिंसा किये मालिक नहीं हुआ जा सकता और बिना किसी को गुलाम बनाये मालिक नहीं हुआ जा सकता। बिना परतंत्रता थोपे पजेसिव होना असम्भव है।

लेकिन क्यों है मनुष्य के मन में इतनी आकांक्षा कि वह मालिक बने? क्यों दूसरों का मालिक बनने की आकांक्षा है? दूसरों के मालिक बनने में इतना रस क्यों है? बहुत मजे की बात है। चूँकि हम अपने मालिक नहीं हैं, इसलिए।

जो व्यक्ति अपना मालिक हो जाता है, उसकी मालकियत की धारणा खो जाती है। लेकिन हम अपने मालिक नहीं हैं और उसकी कमी हम जिन्दगी भर दूसरों के मालिक होकर पूरी करते रहते हैं। लेकिन कोई सारी पृथ्वी का मालिक हो जाय तो भी कमी पूरी नहीं हो सकती। क्योंकि अपने मालिक होने का मजा और है और दूसरे के मालिक होने में सिवाय दुःख के और कुछ भी नहीं। अपना मालिक होना एक आनन्द है, दूसरे का मालिक होना सदा दुःख है। इसलिए जितनी बड़ी मालकियत होती है, उतना बड़ा दुःख पैदा हो जाता है। जिन्दगी भर हम कोशिश करते हैं कि वह जो एक चीज चूक गई है, कि हम अपने मालिक नहीं हैं, सम्राट् नहीं हैं अपने, वह हम दूसरों के मालिक बन कर पूरा करने की कोशिश करते हैं। यह ऐसे ही है जैसे कोई प्यास को आग से पूरा करने की कोशिश करे और प्यास और बढ़ती चली जाय। आग से प्यास नहीं बुझायी जा सकती। दूसरे का मालिक बन कर अपनी मालकियत नहीं पायी जा सकती, बल्कि बड़े मजे की बात है जितना ही हम दूसरे के मालिक बनते हैं, जिसके हम मालिक बनते हैं उसका हमें गुलाम भी बन जाना पड़ता है। असल में मालकियत दोहरी परतंत्रता है। जिसके हम मालिक बनते हैं वह तो हमारा गुलाम बनता ही है, हमें भी उसका गुलाम बन जाना पड़ता है। मालिक अपने गुलाम का भी गुलाम होता है। पति कितना ही पत्नी का मालिक बनता हो, लेकिन गुलाम भी हो जाता है। और सम्राट् कितने ही बड़े राज्य का मालिक हो पूरी तरह गुलाम हो जाता है—गुलाम हो जाता है भय का, क्योंकि जिन्हें हम परतंत्र करते हैं उन्हें हम भयभीत कर देते हैं। और जिन्हें हम परतंत्र करते हैं उनकी तरफ से हमारे प्रति विद्रोह और बगावत शुरू हो जाती है। और जिन्हें हम परतंत्र करते हैं, वे भी हमें परतंत्र करना जानते हैं।

मैंने सुना है, एक आदमी एक गाय को रस्सी बाँध कर जंगल की तरफ ले जा रहा है और एक संन्यासी उस रास्ते से गुजर रहा है। वह आदमी गाय को पीटता हुआ जंगल की तरफ ले जा रहा है। उस संन्यासी ने खड़े होकर उस गाँव के लोगों से पूछा कि मैं एक सवाल पूछना चाहता हूँ। यह गाय इस आदमी के साथ बँधी है या यह आदमी इस गाय के साथ बँधा है? गाँव के लोगों ने कहा, बात सीधी और साफ है, गाय आदमी के साथ बँधी है। संन्यासी ने पूछा, अगर गाय भाग जाय तो आदमी उसके पीछे भागेगा या नहीं भागेगा? उन लोगों ने कहा, भागना ही पड़ेगा। तो उस संन्यासी ने कहा, गाय बहुत दृश्य रस्सी से बँधी है और आदमी बहुत अदृश्य रस्सी से बँधा है। यह भी गाय को छोड़ नहीं सकता। गाय के गले में रस्सी है जो बहुत साफ है और दिखाई पड़ रही है। इस आदमी के गले में भी गाय की रस्सी है जो बहुत साफ है, पर दिखाई नहीं पड़ रही है।

मालिक और गुलाम में इतना ही फर्क है कि एक की गुलामी दृश्य होती है और दूसरे की गुलामी अदृश्य होती है। इससे ज्यादा कोई फर्क नहीं है। हम जिसे गुलाम बनाते हैं वह हमें भी गुलाम बना लेता है। दि पजेसर बिकम्स दि पज़ेस्ड। परिग्रह खोज है इस बात की कि मैं अपना मालिक कैसे हो जाऊँ।

सुना है मैंने, एक फकीर के मरने का वक्त करीब आ गया था। थोड़े-से पैसे उसके पास थे। उसने अपने शिष्य से कहा, इस गाँव में सबसे गरीब आदमी को मैं ये पैसे देना चाहता हूँ। तो गाँव के सारे गरीब दूसरे दिन इकट्ठे हो गये। लेकिन उसने किसी को गरीब मानना स्वीकार न किया। एक-एक को उसने कहा, नहीं तू नहीं है, नहीं तू नहीं है। अभी असली गरीब नहीं आया और फिर दोपहर सम्राट् अपने रथ से निकला तो उसने अपने पैसे की झोली सम्राट् के रथ पर फेंक दी। सम्राट् को भी पता था कि सबसे गरीब आदमी को वे पैसे मिलने वाले हैं उस फकीर के। उस सम्राट् ने हँस कर कहा कि पागल हो गये हो, सबसे अमीर आदमी पर पैसे फेंकते हो? घोषणा की थी सबसे गरीब आदमी के लिए। तो उस फकीर ने कहा कि जिनके पास कम चीजें हैं उनकी गुलामी भी कम है, उनकी गरीबी भी कम है। तुम्हारे पास चीजें ज्यादा हैं, तुम्हारी गुलामी भी बड़ी है और तुम्हारी गरीबी भी बड़ी है। और मजा यह है सम्राट्, कि जिनके पास बहुत कम है शायद उन्होंने और खोज की आशा छोड़ दी हो, किन्तु जिनके पास बहुत ज्यादा है उनकी खोज की आशा का कोई हिसाब नहीं। तुमसे बड़े गरीब आदमी को मैं इस ज़मीन पर नहीं जानता हूँ। ये पैसे मैं तुम्हें भेंट करता हूँ।

शायद उस फकीर का कहना ठीक ही था। बड़े गुलाम वे ही हैं जिन्हें दूसरों के सम्राट् होने का भ्रम पैदा हो जाता है। और बड़े गरीब वे ही हैं जो बाहर की सम्पत्ति से भीतर की गरीबी मिटाना चाहते हैं। और बड़े परतंत्र वे ही हैं जो दूसरों को परतंत्र करके स्वयं की स्वतंत्रता के ख्याल में भटकते हैं। कोई भी आदमी किसी को परतंत्र करके स्वतंत्र नहीं हो सकता। परिग्रह इसी भ्रान्ति का नाम है। म स्वतंत्र होना चाहता हूँ तो मैं सोचता हूँ कि किसी को परतंत्र कर लूँ तो मैं स्वतंत्र हो जाऊँ। लेकिन परतंत्रता दोहरी है। जंजीरें दोनों तरफ कस जाती हैं। जेलखाने में वे जो कैदी बन्द हैं वे ही जेल में बन्द नहीं हैं। वह जो जेलखाने के बाहर संतरी खड़ा हुआ है वह भी उतना ही बँधा है। एक दीवाल के बाहर बँधा है, एक दीवाल के भीतर बँधा है। न दीवाल के भीतरवाला भाग सकता है, न दीवाल के बाहर वाला भाग सकता है। और बड़े मजे की बात है कि दीवाल के भीतर वाला तो भागने का उपाय भी करे, दीवाल के बाहर वाला भागने का उपाय भी नहीं करता है। वह इस ख्याल में है कि स्वतंत्र है।

मैंने सुना है कि डाकुओं के एक गिरोह ने एक नेता को पकड़ लिया। जंगल में निकलती थी कार, गाड़ी रोक ली और उस नेता को पकड़ लिया। लेकिन वे डाकू बड़े मजेदार लोग थे। नेता तो बहुत घबराया, लेकिन उन डाकुओं ने कहा, घबड़ाओ मत, क्योंकि हम सजातीय हैं, हम एक ही जाति के हैं। उस नेता ने कहा, मैं मतलब नहीं समझा। तो उन डाकुओं ने कहा, कई बातों में हमारा बड़ा तालमेल है। तुम्हारे आगे पुलिस चलती है, हमारे पीछे पुलिस चलती है। ज्यादा फर्क नहीं है। तुम पुलिस की तरफ से आगे से बँधे होते हो, हम पीछे से बँधे होते हैं। और ध्यान रहे आगे पुलिस हो तो भागना जरा मुश्किल है। पीछे पुलिस हो तो भागा भी जा सकता है।

जिन्दगी के अनूठे रहस्यों में से एक यह है कि हम जिसे बाँधते हैं उससे हमें बँध ही जाना पड़ेगा। उसे बाँधने के लिए भी बँध जाना पड़ेगा। परिग्रह की बड़ी गहराइयाँ हैं। उसके सूक्ष्मतम हिस्सों को समझ लेना जरूरी है, ताकि उसके बाहर के विस्तार को भी समझा जा सके।

परिग्रह की पहली जो कोशिश है वह यह है कि मुझे यह ख्याल भूल जाय कि मैं परतंत्र हूँ। मुझे यह ख्याल भूल जाय कि मैं सीमित हूँ। मुझे यह ख्याल भूल जाय कि मैं अपना मालिक नहीं हूँ। लेकिन यह ख्याल भुलाया नहीं जा सकता। अगर मैं मालिक नहीं हूँ तो नहीं हूँ। और कितना ही मैं विस्तार करूँ इसे भुलाने का, उस सारे विस्तार के बीच भी मेरे गहरे में मैं जानूँगा कि मैं मालिक नहीं हूँ। सिकन्दर भी जानता है कि वह मालिक नहीं है, हिटलर भी जानता है कि वह मालिक नहीं है। और जितना ही पता चलता है कि मालिक नहीं हूँ उतना ही बाहर की मालकियत को फैलाता चला जाता है, मजबूत करता चला जाता है। जितनी ही बाहर की मालकियत मजबूत होती है, हो सकता है थोड़ी बहुत देर को भूल जाता हो, लेकिन बार-बार स्मरण लौट आता है कि मैं मालिक नहीं हूँ। हम भीतर मालिक क्यों नहीं हैं? जो भीतर है उसे हम जानते ही नहीं, तो मालिक होना बहुत असम्भव है।

स्वामी राम अमरीका गये तो अमरीकी प्रेसिडेंट उनसे मिलने आया। और उस अमरीकी प्रेसिडेंट ने राम की बातें बड़ी अजीब सी पायीं। असल में भाषा अलग थी, भाषा अलग होगी ही। संन्यासी जो भाषा बोलता है वह किसी और दुनिया की भाषा है। राम सदा अपने को बादशाह राम कहते थे। उस अमरीकी प्रेसिडेंट ने कहा, मैं जरा समझ नहीं पा रहा। ह्वाट डू यू मीन बाई इट? यह बादशाह राम, इसका मतलब क्या है? आपके पास तो कुछ दिखाई पड़ता नहीं। कुछ भी तो नहीं है आपके पास सिवाय लँगोटी के। बादशाह कैसे

हो? तो राम ने कहा, यह लँगोटी थोड़ी-सी बाधा है मेरी बादशाहत में। इसलिए घोषणा जरा धीरे करता हूँ। वैसे अब मैं किसी चीज से बँधा हुआ नहीं हूँ। बस, यह लँगोटी रह गई है। मैं बादशाह हूँ। क्योंकि मुझे कोई भी जरूरत नहीं है। मेरी कोई माँग नहीं है। मेरी कोई चाह नहीं है। यह एक लँगोटी है, यह थोड़ा मुझे बाँधे हुए है। और लँगोटी तो मुझे क्या बाँधेगी, मैं ही इसको बाँधे हुए हूँ। इसलिए हम दोनों बँध गये हैं। लँगोटी मुझसे बँध गई है, मैं लँगोटी से बँध गया हूँ। निश्चित ही महावीर अपने को बादशाह कह सकते हैं। महावीर के बड़े भाई ने शायद सोचा होगा कि राज्य छोड़कर चला गया छोटा भाई। सोचा होगा कैसा पागल है? बड़े के हाथ में सब राज्य दे गया, साम्राज्य दे गया और खुद नंगा होकर फकीर हो गया। नासमझ है। लेकिन बहुत कम लोग समझ पाये कि बादशाह हो गये महावीर, और बड़ा भाई गुलाम रह गया।

बादशाहत इस बात से शुरू होती है कि मैं जो हूँ उतना पर्याप्त हूँ। इट इज एनफ टू बी वनसेल्फ। कोई कमी नहीं है जिसे मुझे पूरी करनी पड़े। कोई कमी नहीं है जिसकी वजह से मैं खाली रहूँ। कोई कमी नहीं है जिसके बिना मुझे लगे कि कुछ अधूरा है। बादशाहत एक इनर फुल-फिलमेन्ट है, एक भीतरी आप्तता है। सब है इसलिए कोई कमी नहीं है। लेकिन सम्राट् के पास कुछ भी नहीं है। बहुत है उसके पास, जो दिखाई पड़ता है चारों तरफ। लेकिन वह खुद ही उसके पास नहीं है और भीतर एक खालीपन है, एक रिक्तता है। भीतर हम सब रिक्त हैं। इस रिक्तता को हम फर्नीचर से भरेंगे, इस रिक्तता को हम मकान से भरेंगे, इस रिक्तता को हम धन से भरेंगे। इस रिक्तता को हम यश, पद, प्रतिष्ठा से भरेंगे। फिर भी हम पायेंगे सारी पद-प्रतिष्ठाएँ इकट्ठी हो गई हैं; सारा धन का ढेर लग गया है और भीतर की रिक्तता अपनी जगह खड़ी है। बल्कि पहले इतनी दिखाई नहीं पड़ती थी जितनी अब दिखाई पड़ती है। क्योंकि कान्ट्रास्ट है—बाहर धन के ढेर लग गये हैं तो भीतर की रिक्तता और प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ने लगती है। गरीब आदमी को अपनी गरीबी उतनी साफ कभी नहीं दिखाई पड़ती जितनी अमीर आदमी को अपनी गरीबी दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। मेरी दृष्टि में अमीरी का एक ही लाभ है कि उससे गरीबी दिखाई पड़ती है। इसलिए मैं सदा अमीरी के पक्ष में रहता हूँ। क्योंकि उसके बिना गरीबी कभी दिखाई नहीं पड़ सकती। काले तख्ते पर जैसे सफेद रेखाएँ उभर के दिखाई पड़ने लगती हैं, ऐसे बाहर इकट्ठे हो गये धन में भीतर की निर्धनता प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ने लगती है। सब होता है बाहर, भीतर कुछ भी नहीं होता है। वह जो भीतर की रिक्तता है उसी को भरने के लिए परिग्रह है। लेकिन कोई सोच

सकता है बाहर की चीजें छोड़ दें तो क्या भीतर की रिक्तता मिट जायेगी ? यही असली सवाल है।

क्या हम बाहर की चीजें छोड़कर भाग जायँ तो भीतर की रिक्तता मिट जायेगी ? अगर बाहर की चीजों के होने से भीतर की रिक्तता नहीं मिटी तो बाहर की चीजों के न होने से कैसे मिटेगी ? बाहर की चीजों के होने से भी न मिटी तो बाहर की चीजों के छूटने से कैसे मिट सकती है ? लेकिन आदमी का मन बुनियादी भूलों में घिरा रहता है। पहले वह सोचता है बाहर की चीजों को इकट्ठा करने से भर लूँगा, फिर जब पाता है, बाहर की चीजें इकट्ठी हो गईं और भराव नहीं आया तो सोचता है बाहर की चीजों को छोड़ कर भर लूँ। लेकिन पागल हुआ है। जब चीजों से भरा न जा सका तो चीजों के हटाने से कैसे भर जाएगा ? इसलिए ध्यान रहे, अपरिग्रह का अर्थ बाहर की चीजों को छोड़ना नहीं है। अपरिग्रह का अर्थ भीतर की पूर्णता को पाना है। और जब भीतर की पूर्णता भरती है तो बाहर चीजों को भरने की दौड़ बिदा हो जाती है।

इसलिए मैंने कहा, परिग्रह का अर्थ वस्तुओं से नहीं है, परिग्रह का अर्थ पजेसिवनेस से है। एक जनक रह सकता है घर में लेकिन जनक परिग्रही नहीं है। परिग्रह तो है बहुत, परिग्रही नहीं है। और एक संन्यासी अपरिग्रही दिखाई पड़ता है और परिग्रही हो सकता है। अक्सर होता है। क्योंकि उसने दूसरी भल की है। उसने भूल की है कि चीजों को हटा दूँगा। लेकिन चीजों को हटाने से क्या होगा ? भीतर का खालीपन, हो सकता है, दिखाई पड़ना बन्द हो जाय, इतना हो सकता है। इतना हो सकता है, चूंकि बाहर चीजें न रह जायँ इसलिए बाहर भी खाली हो जाय, भीतर भी खाली हो जाय तो कन्ट्रास्ट न रह जाय और चीजें दिखाई पड़नी बन्द हो जायँ। लेकिन भीतर का खालीपन बाहर के खालीपन से भी नहीं मिट सकता। भीतर भराव तो चाहिए, भीतर फुलफिलमेन्ट चाहिए, भीतर एक पूर्णता का पोजिटिव जन्म, विधायक जन्म चाहिए तो ही बाहर की पकड़ बिदा होगी, अन्यथा बिदा नहीं हो सकती।

एक फकीर हुआ है डायोजनिज। नंगा गुजर रहा है जंगल से। शायद महावीर की जोड़ का आदमी पश्चिम में वही हुआ। नग्न ही है। उतना ही मस्त, उतना ही आनन्दित, उतना ही स्वस्थ जंगल से गुजरता है। कुछ लोग गुलामों को बेचने बाजार में जा रहे हैं। उन्होंने देखा इस डायोजनिज को अकेला, नंगा, स्वस्थ, सुन्दर, शक्तिशाली। सोचा यदि यह पकड़ में आ जाय तो इसके दाम अच्छे मिल सकते हैं; मगर डर लगा उन्हें कि इसे पकड़ भी पायेंगे ! थे तो वे आठ, लेकिन डर लगा कि इसे पकड़ भी पायेंगे ! शक्तिशाली है बहुत। कहीं झंझट न हो जाय।

फिर भी आठ हैं। कोशिश कर ली जाय। उन्होंने बड़ी ताकत इकट्ठी करके डायोजनिज पर हमला बोला, लेकिन डायोजनिज ने तो हमले का जवाब नहीं दिया, या कहें कि जवाब दिया, लेकिन डायोजनिज के ढंग से दिया। बीच में खड़ा हो गया आँख बन्द करके और उनसे कहा कि बोलो क्या इरादा है ? उसने कोई लड़ाई ही न की। वे सब कँप रहे थे भय से। उसने कहा, आश्वस्त हो जाओ, भयभीत मत होओ। मुझसे तुम्हारा कोई बुरा न होगा। क्योंकि जिसने अपने प्रति बुरा करना बन्द कर दिया वह किसी के प्रति बुरा कैसे कर सकता है ? बोलो क्या इरादा है। वे बहुत घबड़ाये। क्योंकि डायोजनिज उनके हमले का जवाब दे देता तो शायद इतने न घबड़ाते। उन्हें कहने में बड़ी कठिनाई हो गई कि हम तुम्हें गुलाम बनाने आये हैं। वे एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। तो डायोजनिज ने कहा, मत फिक्र करो, बोलो, तुम जो कहोगे वही हो जाएगा। उन्होंने नीचे आँखें झुका कर कहा कि हम बहुत शर्मिन्दा हैं, लेकिन हम तुम्हें गुलाम बनाने आये हैं। डायोजनिज ने कहा, यह भी खूब बढ़िया रहा। चलो, हम गुलाम हुए। अब क्या इरादा है ? उन लोगों ने डायोजनिज की तरफ देखा और कहा कि गुलाम हुए ? क्या कोई विरोध न करोगे ? डायोजनिज ने कहा, हम अपने मन के मालिक हैं। हम गुलाम होना भी चुन सकते हैं, लड़ाई कुछ भी नही है। अब कहाँ चलना है ? तो उन्होंने कहा, हम हाथ में जंजीरें डाल दें। डायोजनिज ने कहा, पागल जंजीरों की कोई जरूरत नहीं। हम तो तुम्हारे साथ चल ही रहे हैं। चलो जहाँ चलना है। वे डायोजनिज को लेकर बाजार में पहुँचे। भीड़ इकट्ठी हो गई। इतना सुन्दर गुलाम शायद ही कभी बिकने आया हो। टिकटी पर खड़ा किया गया डायोजनिज को। और जब नीलाम करनेवाले आदमी ने कहा कि जो इस गुलाम को खरीदना चाहे वह बोली शुरू करे। तो डायोजनिज ने कहा चुप नासमझ, पूछ उनसे कि कौन किसके साथ आया है ? वे मेरे पीछे आये हैं कि मैं उनके पीछे आया हूँ ? बँधा कौन किससे है ? मैं उनसे बँधा हूँ कि वे मुझसे बँधे हैं ? गुलाम शब्द का उपयोग मत करना। हम अपने मालिक हैं। रुक, मैं खुद ही आवाज लगा देता हूँ तो डायोजनिज ने उस टिकटी से खड़े होकर कहा कि अगर कोई एक मालिक को खरीदना चाहे तो एक मालिक बिकने आया हुआ है। भीड़ हैरान हो गई। उन्होंने कहा, मालिक ? डायोजनिज ने कहा, मैं अपना मालिक हूँ।

यह जो अपनी मालकियत है यह एक विधायक उपलब्धि है। यह विधायक उपलब्धि हो जाय तो बाहर की पकड़ छूट जाती है। बाहर की पकड़ सिर्फ इसीलिए है कि भीतर की कोई पकड़ नहीं है। हम बाहर पकड़े चले जाते हैं और जिसको भी हम बाहर पकड़ते हैं उसकी हम हत्या करना शुरू करते हैं। परिग्रह की जो हिंसा

है वह यही है कि अगर हम किसी व्यक्ति को पकड़ेंगे बाहर तो हम उसे मारना शुरू कर देंगे। क्योंकि बिना मारे उसे पजेस नहीं किया जा सकता। उसे मारना ही पड़ेगा। अगर एक गुरु एक शिष्य को पकड़ ले तो वह शिष्य को मारना शुरू कर देगा। क्योंकि जिन्दा शिष्य शिष्य नहीं बनाया जा सकता। उसे मारना जरूरी है। इसलिए आज्ञाएँ, अनुशासन, नियम, मर्यादा उन सबमें उसे मारा जाएगा। उसकी स्वतंत्रता काटी जाएगी। जब वह मुर्दा हो जाएगा तभी शिष्य हो सकता है। एक पति अपनी पत्नी को मारना शुरू कर देगा, एक पत्नी अपने पति को मारना शुरू कर देगी एक मित्र दूसरे मित्र को मारना शुरू कर देगा। क्योंकि जब उसे बिलकुल मार डाला जाय, तभी आश्वस्त हुआ जा सकता है कि वह भाग नहीं जाएगा। वह स्वतंत्र नहीं हो जाएगा। लेकिन इसमें एक बड़ी आन्तरिक कठिनाई है। जब हम किसी व्यक्ति को मार कर उसके मालिक हो जाते हैं तो मालिक होने का मजा चला जाता है। यह बड़ा कंट्राडिक्शन है। बिना मारे मालिक नहीं हो सकते, और मारा कि मजा गया। क्योंकि मरे हुए के मालिक होने में कोई मजा नहीं आता। इसलिए मन एक पत्नी से दूसरी पत्नी पर जाता है, दूसरी से तीसरी पर जाता है। एक मकान से दूसरे मकान पर, दूसरे से तीसरे पर। एक गुरु से दूसरे गुरु पर, एक शिष्य से दूसरे शिष्य पर। जिस चीज के हम मालिक हो जाते हैं, वह बेमानी हो जाती है। क्योंकि मालिक होते ही वह मुर्दा हो जाती है और मुर्दा के मालिक होने में कोई ज्यादा मजा नहीं आता। जिन्दा का मालिक होना चाहिए। इसलिए मालकियत में एक दूसरा विरोधाभास है और वह विरोधाभास यह है कि मालकियत मारती है और मार कर अप्रसन्न हो जाती है। क्योंकि प्रसन्नता खो जाती है। प्रेयसी जितना सुख देती है उतना पत्नी नहीं देती। लेकिन प्रेयसी को तत्काल पत्नी बनाने की इच्छा होती है। क्योंकि प्रेयसी की मालकियत अनिश्चित है। पत्नी की मालकियत सुनिश्चित है। लेकिन पत्नी बनते ही वह मर गई। मरते ही वह बेमानी हो गई। इसलिए जिस व्यक्ति को हम पा लेते हैं वह बेमानी हो जाता है। हम उसे भूल जाते हैं, वह अर्थ ही नहीं रह जाता। जो लोग व्यक्तियों को मार-मार कर इकट्ठा करते जाते हैं वह धीरे-धीरे व्यक्तियों से ऊब जाते हैं। क्योंकि मारने में व्यर्थ श्रम करना पड़ता है। श्रम के बाद फल कुछ भी नहीं मिलता।

इसलिए जो समझदार परिग्रही है, चालाक, वह व्यक्तियों को छोड़ कर वस्तुओं पर परिग्रह बिठाने लगता है। उनको मारने की झंझट नहीं करनी पड़ती। वह मरी-मराई ही होती है। इसलिए जो लोग व्यक्तियों से परेशान होकर ऊब गये हैं वे धन इकट्ठा करने में, पद इकट्ठा करने में लग जाते हैं। वह ज्यादा सुविधापूर्ण है, कनवीनिएंट है। एक घर में कुर्सी ले आया है तो वह मरी हुई

ही घर में जाती है। उसको कहाँ रखना है, इसके आप पूरे मालिक हैं। रखना है, नहीं रखना है, आप पूरे मालिक हैं। उसको मारने की अद्दोजहद और परेशानी नहीं होती। और जब हम किसी व्यक्ति को घर में लाते हैं तो उसको भी कुर्सी बनाना चाहते हैं। जब तक वह कुर्सी नहीं बनता तब तक हमें बेचैनी रहती है। जब वह कुर्सी बन जाता है तब फिर बेचैनी शुरू हो जाती है। इसलिए जो चालाक परिग्रही हैं वे वस्तुओं पर मेहनत करते हैं। जो नासमझ परिग्रही हैं वे व्यक्तियों पर मेहनत करते रहते हैं। लेकिन दोनों ही अज्ञान की मेहनत है। न तो हम व्यक्तियों से भर सकते हैं अपने को, न वस्तुओं से भर सकते हैं अपने को। हमारे हाथ खाली ही रह जायेंगे। भरने की जगह सिर्फ एक है। इस दुनिया में और कोई भरा है ही नहीं। कभी रहा ही नहीं है। हम सिर्फ अपने से भर सकते हैं। लेकिन अपना हमें कोई पता नहीं है।

इस अपने का कैसे पता लगे और इसे अपने के पता लगने में अपरिग्रही की दृष्टि कैसे सहयोगी हो सकती है? तो एक बात आप से कहना चाहूँगा, जो भी आपके पास है आल दैट यू हैव, जो भी आपके पास है उस पर एक दफा गौर से नजर डाल कर देखना कि क्या उससे आप जरा भी, रंचमात्र भी भर सके हैं? क्या उसने इंच भर भी आपको कहीं भरा है? सबके पास कुछ न कुछ है। 'इस कुछ' ने आपको जरा भी भरा हो तो फिर आप 'इस कुछ' को बढ़ाने में लग जाना। थोड़ा भरा है तो और ज्यादा भर सकेगा, और ज्यादा भर सकेगा। लेकिन अगर 'इस कुछ' ने बिलकुल न भरा हो तो फिर थोड़ा समझना पड़ेगा कि 'यह कुछ' कितना ही ज्यादा हो जाय तो भी भर नहीं पाएगा। यह गणित बहुत सीधा है, लेकिन अनुभव हमेशा आशा के सामने हार जाता है। हमारा अतीत का अनुभव तो यही होता है कि परिग्रह भर नहीं पाया, लेकिन भविष्य की आशा यही होती है कि शायद कुछ और मिल जाय, और भर जाय।

सुना है मैंने एक गाँव में एक आदमी की तीसरी पत्नी मरी और उसने फिर चौथी शादी की। तो गाँव के लोग उसे कुछ भेंट करना चाहते थे, लेकिन भेंट करते-करते थक गये। तीन दफा शादी कर चुका था। हर बार भेंट कम होती चली गई थी। जब उसने चौथी शादी की तो उम्र भी बहुत हो गई थी और गाँव के लोग भी परेशान हो गये कि अब क्या भेंट करें। तो गाँव के लोगों ने एक तख्ती उसे भेंट की जिस पर लिखा था "अनुभव के ऊपर आशा की विजय।" तीन पत्नियों का अनुभव भी उसको चौथी पत्नी से न रोक पाया। पूरा गाँव जानता है। जब तक पत्नी जिन्दा रहती है, तब तक वह गाँव में पत्नी के जिन्दा होने के लिए रोता है और जब पत्नी मर जाती है तो पत्नी के मरने के लिए रोता है। अनुभव पर

आशा सदा जीत जाती है। परिग्रही का चित्र जो है वह आशा से बँधा हुआ चलता है। अपरिग्रही की दृष्टि तो अभी आयेगी जब आशा पर अनुभव जीते। आपका अतीत, आपका अनुभव पर्याप्त है कहने को कि सब पाकर भी कुछ पाया नहीं गया है। और वे जो राष्ट्रपति के पदों पर पहुँच जाते हैं, वे कुर्सियों पर बैठ कर अचानक पाते हैं कि कुर्सी पर बैठ गये, पाया कुछ भी नहीं गया है।

असल में जहाँ पाना है वह है दिशा बीइंग की ओर जो हम पा रहे हैं वह है दिशा हैविंग की। जो हम पा रहे हैं वे हैं चीजें, और जो हमें पाना है वह है आत्मा। यह चीजें कभी भी आत्मा नहीं बन सकतीं। यह भ्रान्ति की दौड़ एक जिन्दगी नहीं, अनन्त जिन्दगी चलती है। असल में हम अपने पुराने अनुभवों को भूलते चले जाते हैं। ऐसा नहीं है कि पिछले जन्म के अनुभव हमारे भूल गये हैं, हमने भुला दिये हैं। हम इसी जन्म के अनुभवों को भुलाते, उपेक्षा करते चले जाते हैं। हम सदा ही अनुभव कोइ नकार करते चले जाते हैं और हम सोचते हैं कि जो अब तक हुआ उससे भिन्न आगे हो सकता है। अनेक जन्मों का अनुभव भी हमें इस बात से नहीं रोक पाता है कि हम वस्तु को आत्मा न बना सकेंगे। हैविंग, बीइंग नहीं बन सकता है। वह असम्भावना है। लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि असम्भव की भी आकांक्षा बड़ी रसपूर्ण होती है। जो नहीं हो सकता उसको करने का भी दिल होता है। कई बार तो इसीलिए होता है कि वह नहीं हो सकता। अब चाँद पर चढ़ने का मजा चला गया। हजार साल से आदमी को था। चाँद पर पहुंचने की आकांक्षा बड़ी रसपूर्ण थी, क्योंकि वह असंभव मालूम पड़ता था। वह इतना असंभव मालूम पड़ता था कि जो लोग चाँद पर पहुँचने का ख्याल करते थे उनको हम पागल समझते थे। अंग्रेजी का तो जो पागल के लिए शब्द है लुनाटिक, उसका मतलब है चाँदमारा। वह लूना से बना है। किस आदमी के दिमाग में चाँद छा गया, जो अब चाँद पर पहुँचना चाहता है, तो उसको पागल कहता था। हिंदी में भी पागल के लिए चाँदमारा शब्द है। जिस पर चाँद का हमला हो गया, जो असंभव से पीड़ित हो गया। लेकिन हम सब चाँदमारे हैं, हम सब लुनाटिक हैं। लूनाटिक इस अर्थ में कि हम सब असंभव के लिए चाहते रहते हैं। सबसे बड़ा असंभव इस जगत् में क्या है—दी मोस्ट इम्पासिबल ? चाँद पर पहुँचा जा सकता है, इसलिए जब चाँद पर पहुँचने वालों को लुनाटिक कहना ठीक नहीं है। अब बात खत्म हो गयी। अब शब्द बदल देना चाहिए। अब चाँदमारा पागल का पर्यायवाची नहीं रहा। अब तो चाँद पर बुद्धिमान् आदमी पहुँच गये हैं, शायद मंगल पर पहुँचे, शायद किसी तारे पर पहुँचे। लेकिन ये शब्द कठिन हैं, असंभव नहीं है।

असंभव सिर्फ जगत् में मेरे हिसाब से एक चीज है और वह यह है कि वस्तुओं को कभी भी आत्मा नहीं बनाया जा सकेगा—हैविंग कैनाट बी ट्रांसफार्म्ड इन टू बीइंग। वह एक असंभावना है जो सुनिश्चित रूप से असंभव रहेगी। इसलिए महावीर या बुद्ध या जीसस उन लोगों को पागल कहते हैं जो परिग्रह में पड़े हैं। परिग्रही, अर्थात् पागल। वह एक ऐसे काम में लगा है जो हो ही नहीं सकता है, यही उसका आकर्षण है। लेकिन आकर्षण या असत्य, सत्य नहीं बनते। परिग्रह का सत्य यह है कि वह असंभावना है।

सुना है मैंने, सिकंदर से डायोजनिज ने एक बार कहा था कि तू अगर पूरी दुनिया पा लेगा, तो तूने कभी सोचा है, कि फिर क्या करेगा ? सिकंदर, कहते हैं सुन कर उदास हो गया और सिकंदर ने कहा, यह मेरे ख्याल में ही नहीं आया। ठीक कहते हैं आप। दूसरी तो कोई दुनिया नहीं है। अगर मैं एक पा लूँगा तो फिर क्या करूँगा। एकदम अनएम्प्लायेड हो जाऊँगा, बेकार ही हो जाऊँगा। सिकंदर उदास हो गया यह जान कर कि दूसरी दुनिया नहीं है। इसका मतलब ? इसका मलतब यह कि वह पूरी दुनिया पा लेगा तब कितनी उदासी होगी, अभी तो सिर्फ ख्याल है। आपने कभी सोचा नहीं कि जो आप चाहते हैं, अगर पा लेंगे तो क्या होगा। अगर इस दुनिया में किसी दिन ऐसा इन्तजाम किया जा सके जैसा कि कथाओं में वर्णन है, कि स्वर्ग में है,— अगर हम कभी इस दुनिया में कल्पवृक्ष बना सके तो प्रत्येक आदमी को महावीर हो जाना पड़ेगा। अगर किसी दिन कल्पवृक्ष बना सकें इस दुनिया में, और कल्पवृक्ष के नीचे जो चाहा आपने, वह तत्काल मौजूद हो गया, तो सारी दुनिया अपरिग्रही हो जायेगी। कोई परिग्रही नहीं रह जायेगा, क्योंकि जैसे ही कोई चीज आपको तत्काल मिल जाय, आप हैरान होते हैं कि मिलते ही वह बेकार हो गयी। आप फिर पुरानी जगह खड़े हो गये जहाँ आप मिलने के पहले थे। यही रूप किसी और चीज के लिए हो गया। आप एक भूख है, एक खालीपन, एक रिक्तता, जो हर चीज के बाद फिर आगे आकर खड़ी हो जाती है। आदमी एक क्षितिज की भाँति, होरीजन की भाँति है। देखते हैं, आकाश छूता हुआ मालूम पड़ता है जमीन को। चलते चले जायँ, लगता है यही रहा पास। दस मील होगा, बीस मील होगा। अभी पहुँच जायेंगे। पहुँचते हैं और पाते हैं कि आकाश बीस मील आगे हट गया। हट नहीं सकता था अगर वहाँ होता। आपके चलने से आकाश के हटने का कोई संबंध नहीं है। आकाश कभी भी कहीं पृथ्वी से नहीं छूता है, सिर्फ छूता हुआ दिखायी पड़ता है, आकाश कहीं भी छूता नहीं है।

मनुष्य की वासनाएँ सर्कुलर हैं, गोल हैं, इसलिए आशा उपलब्धि बनती हुई दिखायी पड़ती है, बनती कभी नहीं। मनुष्य की वासनाएँ वर्तुलाकार हैं, जैसे

पृथ्वी गोल है और आशा का आकाश चारों तरफ है, तो ऐसा लगता है, ये रहे दस मील। अभी पहुँच जायेंगे जहाँ आशा उपलब्धि बन जायेगी। जहाँ जो मैंने चाहा है, वह मिल जायेगा और मैं तृप्त हो जाऊँगा। दस मील चल कर पता चलता है कि होरीजन आगे चला गया। आकाश आगे बढ़ गया, वह अब और आगे जाकर छू रहा है। फिर हम बढ़ते हैं, और जिन्दगी भर बढ़ते रहते हैं, और अनेक जिन्दगी बढ़ते रहते हैं। और मजा यह है कि हमें यह कभी ख्याल नहीं आता कि दस मील पहले जो आकाश छुता हुआ दिखायी पड़ता था, वह फिर दस मील आगे दिखायी पड़ने लगा। कहीं ऐसा तो नहीं है, आकाश छूता ही नहीं, अन्यथा आकाश आप से डर कर भाग रहा हो और जमीन के छूने के स्थान बदल रहे हों, ऐसा तो नहीं हो सकता? फिर और बड़े मजे की बात है कि हमसे दस मील आगे जो और खड़े हैं वह भी भाग रहे हैं जहाँ हमें लगता है कि आकाश छूता है, वहाँ खड़े लोग भी आगे भाग रहे हैं। उन लोगों के भी जो आगे हैं, जहाँ उन्हें लगता है कि आकाश छूता है, वे भी भाग रहे हैं। जब सारी पृथ्वी भाग रही हो तो जिन्हें थोड़ा भी विवेक है उन्हें यह स्मरण आ जाना कठिन नहीं है कि आकाश पृथ्वी को कहीं छूता ही नहीं। छूना सिर्फ अपियरेंस है, सिर्फ छूता हुआ मालूम पड़ता है। आशा कहीं उपलब्धि नहीं बनती। वासना कहीं तृप्ति नहीं बनती, कामना कहीं पूर्ण नहीं होती, सिर्फ छूती हुई, होती हुई मालूम पड़ती है! और आदमी दौड़ता चला जाता है।

इसलिए परिग्रह के संबंध में अपने अतीत-अनुभव को पूरा-का-पूरा देख लेना जरूरी है। लेकिन हम धोखा देने में कुशल हैं। दूसरों को धोखा देने में उतने कुशल नहीं हैं जितना अपने को धोखा देने में कुशल हैं। दूसरे को धोखा देना बहुत मुश्किल भी है, क्योंकि दूसरा जो है। पर अपने को धोखा देना बहुत आसान है, सेल्फ डिसेप्शन बहुत ही आसान है। हम अपने को धोखा दिये चले जाते हैं। एक रुपया, मैं सोचता हूँ, मुझे मिल जाय तो आनंदित हो जाऊँगा। रुपया मेरे हाथ में आ जाता है, आनंदित बिलकुल नहीं होता। सोचता हूँ, दूसरा और मिल जाय; लेकिन दूसरा रुपया भी पहले रुपये की प्रतिलिपि है, कापी है, यह ख्याल में नहीं आता। दूसरा भी मिल जाता है। तीसरा रुपया भी मिल जाता है, तीसरा भी दूसरे की प्रतिलिपि है। वह भी उसी का चेहरा है। ये मिलते चले जाते हैं, मिलते चले जाते हैं। एक दिन मैं पाता हूँ कि मैं तो खो गया, रुपये ही रुपये हो गये हैं। लेकिन वह जो पहले रुपये के वक्त जो आकाश कहीं मुझे छूता मालूम पड़ता था, वह करोड़ रुपये के बाद भी वहीं छूता हुआ मालूम पड़ता है। फासला उतना ही है, जितना एक रुपये की आशा में था, उतना ही करोड़ रुपये के बाद

फिर पुनः उसी आशा में है। इसलिए कभी कभी हमें हैरानी होती है कि करोड़पति भी एक रुपये के लिए उतना पागल क्यों होता है। करोड़पति भी एक रुपये के लिए उतना ही दीवाना होता है जितना वह होता है जिसके पास एक नहीं है; क्योंकि फासला दोनों का सदा बराबर है। आशा और उपलब्धि का फासला वही है। आपके पास कितना रुपया है इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जो आगे है, जो नहीं है आपके पास, वह दौड़ाता चला जाता है। और कई बार करोड़पति तो और भी कृपण हो जाता है, क्योंकि उसके अनुभव ने कहा कि करोड़ रुपये हो गये, फिर भी अभी उपलब्धि नहीं हुई। जीवन तो चुक गया। अब एक एक रुपये को जितने जोर से पकड़ सके तो ही ठीक है। क्योंकि जीवन चुक रहा है। इधर जीवन समाप्त हो रहा है। जब एक रुपया पास था तो जीवन भी पास था। दौड़ भी थी, ताकत भी थी, पर अब वह भी खत्म हो गयी। अब करोड़ रुपये तो पास हो गये हैं पर जीवन की शक्ति क्षीण हो गयी है, इसलिए बूढ़ा होते-होते आदमी और परिग्रही हो जाता है, और जोर से पकड़ने लगता है कि अब जिन्दगी तो बहुत कम है। बस जितनी जल्दी, जितना ज्यादा पकड़ा जा सके, जितनी जल्दी जितनी यात्रा की जा सके!

सुना है मैंने, एलिस नाम की एक लड़की स्वर्ग पहुँच गयी है और वहाँ जाकर तकलीफ में है। भूखी है, प्यासी है, खड़ी है। दूर की यात्रा है जमीन से स्वर्ग तक की, परियों के देश तक की और फिर परियों की रानी उसे दिखायी पड़ी, वृक्ष के नीचे खड़ी है और बुला रही है। आवाज सुनायी पड़ती है। आवाजें बड़ी भ्रामक हैं, वे सुनायी पड़ती हैं। और उसके आस-पास मिठाइयों का ढेर लगा है, फल-फूल का ढेर लगा है और वह भूखी लड़की दौड़ना शुरू कर देती है। सुबह है, सूरज उग रहा है। वह भागती है, भागती है। दोपहर हो गयी, सूरज सिर पर आ गया, लेकिन फासला उतना का उतना है। लेकिन वह लड़की, लड़की है, अगर बूढ़ी होती तो रुक कर सोचती भी नहीं। वह लड़की खड़ी होकर सोचती है कि बात क्या है--सुबह हो गयी, दोपहर हो गयी दौड़ते-दौड़ते, और जो इतनी निकट मालूम पड़ती थी रानी, अब भी उतनी ही निकट है! कुछ भी फर्क नहीं पड़ा। डिस्टेंस वही है, तो वह चिल्ला कर पूछती है कि रानी, यह तुम्हारा देश कैसा है? सुबह से दोपहर हो गयी दौड़ते-दौड़ते, लेकिन फासला कम नहीं होता। रानी कहती है कि तू थोड़ी देर दौड़ती है, इसलिए फासला कम नहीं होता। जरा तेजी से दौड़। तू दौड़ की ताकत कम लगा रही है, दौड़ काफी नहीं है। यह बात लड़की की समझ में में आ जाती है, बूढ़े की समझ में भी आ जाती है तो लड़की की समझ में आ जाय तो बहुत कठिन नहीं है। उसकी समझ में आ जाती

है कि जरूर फासला इसलिए पूरा नहीं होता है कि दौड़ कमजोर है, इसलिए वह और तेजी से दौड़ती है। फिर साँझ, सूरज ढलने लगता है, लेकिन फासला उतना का उतना ही है। फिर वह चिल्ला कर पूछती है कि अब तो अँधेरा भी उतरने लगा। वह रानी कहती है, तेरी दौड़ कमजोर है। वह लड़की और तेजी से दौड़ती है। अब तो अँधेरा काफी छाने लगा और रानी का दिखायी पड़ना मुश्किल होने लगा। अब वह अँधेरे में चिल्ला कर पूछती है। तेरा देश कैसा है, अब तो रात भी उतर आयी, अब पहुँचने की आशा खो दी है। रानी की खिलखिलाहट सुनायी पड़ती है और वह कहती है तू पागल लड़की है। शायद तुझे पता नहीं, दुनिया में सब जगह, जिस पृथ्वी से तू आती है, उस जगह भी, कोई कभी वहाँ नहीं पहुँचता, जहाँ पहुँचना चाहता है। फासला सदा वही रहता है जो शुरू करते वक्त होता है।

जन्म के दिन जितना फासला है, मृत्यु के दिन उतना ही फासला होता है। सिर्फ एक फर्क पड़ता है। जन्म के दिन सूरज निकलता है, मृत्यु के दिन सूरज ढलता है और अँधेरा हो रहा होता है। जन्म के दिन आशाएँ होती हैं, मृत्यु के दिन फ्रस्ट्रेशन्स होते हैं, विषाद होता है, हार होती है। जन्म के दिन आकांक्षाएँ होती हैं, अभीप्साएँ होती हैं, दौड़ने का बल होता है; मृत्यु के दिन थका मन होता है, हार होती है, टूट गये होते हैं। लेकिन फिर भी ऐसा समझने की कोई जरूरत नहीं है कि मरता हुआ आदमी परिग्रही हो जाता हो। मरता हुआ आदमी भी यही सोचता है, काश थोड़ा वक्त और होता, थोड़े दिन और शेष होते तो दौड़ लेता पहुँच जाता।

ऐसी कथा है कि एक सम्राट् की मौत करीब आ गयी। सौ वर्ष पूरे हो गये। मौत भीतर आयी, उसने सम्राट् से कहा, मैं लेने आ गयी हूँ। आप तैयार हो जायँ। मौत सभी के पास आकर कहती है आप तैयार हो जायँ। हम न सुनें, यह बात दूसरी है, हम बहरे बन जायँ, यह बात दूसरी है। सम्राट् ने कहा, वक्त आ गया जाने का, लेकिन अभी तो मैं कुछ भी न भोग पाया। अभी तो सब आशाएँ ताजी हैं और कभी कोई चीज पूरी नहीं हुई। अभी मैं कैसे जा सकता हूँ? लेकिन मौत ने कहा, मुझे तो किसी को ले ही जाना पड़ेगा। अगर तुम्हारा कोई बेटा राजी हो तुम्हारी जगह मरने को तो मैं उसे ले जाऊँ, वह अपनी उम्र तुझे दे दे। सम्राट् ने अपने बेटे बुलाये, बहुत बेटे थे उसके, सौ बेटे थे। बहुत रानियाँ थीं उसकी। उसने सब बेटों से कहा, कौन है, जो मुझे अपनी उम्र दे दे, क्योंकि अभी तो मेरा कुछ भी पूरा नहीं हुआ। लेकिन वे बेटे भी आदमी थे और जब मरता हुआ सौ वर्ष का बूढ़ा भी जिन्दा रहना चाहे तो पचास

साल का उसका बेटा क्यों न जिन्दा रहना चाहे, अस्सी साल का उसका बेटा क्यों न जिन्दा रहना चाहे, और बीस साल का उसका बेटा जिन्दा रहना क्यों न चाहे? वे निन्यानबे बेटे तो चुप होकर बैठ गये। जो सबसे कम उम्र का बेटा था वह उठ कर खड़ा हुआ। उसकी उम्र कोई पन्द्रह-सोलह साल थी। उसने कहा कि मेरी उम्र ले लें। मौत ने उसे बहुत रोका कि पागल तू यह क्या कर रहा है। उसने कहा कि जब मेरे पिता सौ वर्ष में कुछ पूरा नहीं कर पाये तो मैं भी क्या पूरा कर पाऊँगा। उनको दे जाता हूँ। शायद दो सौ वर्ष में वे कुछ पूरा कर पायें। सौ वर्ष ही तो मेरे पास हैं न, और मेरा भी कोई बेटा शायद ही राजी होगा जिस दिन मुझे उम्र की जरूरत पड़ेगी। क्योंकि देखता हूँ कि निन्यानबे बेटों में से कोई राजी नहीं है तो मेरा बेटा भी शायद ही कोई राजी होगा। उस बेटे ने मौत से कहा कि कम-से-कम मुझे यह तो रहेगा कि अपनी कोई आशा विफल नहीं हुई, क्योंकि हमने कोई आशा ही न की। तो आनन्द के साथ मर सकूँगा। पिता तो बहुत विषाद से मर रहे हैं। इतनी कृपा करना मुझ पर, कि जब सौ साल बाद पिता फिर से मरें, तो मुझे जरा खबर देना कि क्या हालत बनी। सौ वर्ष बीत गये। वर्ष बीतने में देर नहीं लगती। मौत फिर से द्वार पर खड़ी हो गयी है आकर। सम्राट् ने कहा, लेकिन अभी तो सब आशाएँ अधूरी हैं, कोई सपने पूरे नहीं हुए। तब तक उसके पुराने सौ बेटे मर चुके हैं, लेकिन और सौ बेटे पैदा हो गये हैं। उसने कहा, मेरे बेटों को बुलाओ। मौत ने कहा, देखते नहीं आप, दो सौ वर्ष में भी कुछ नहीं हो पाया। उसने कहा थोड़ा और समय मिल जाय तो शायद पूरा हो जाय। वह 'शायद', वह 'परहेप्स' आखिरी मृत्यु के क्षणों में भी खड़ा रहता है, शायद पूरा हो जाय। सौ बेटे बुलाये गये, फिर एक बेटा राजी हो गया। मौत ने उसे भी समझाया कि तू पागल है। पर उसने कहा, बेहतर हो कि तू हमारे पिता को समझा कि वह पागल है। क्योंकि दो सौ वर्ष में कुछ पूरा हो नहीं पाया तो मैं भी क्या कर पाऊँगा? उस बेटे ने मरने के पहले पिता से पूछा कि थोड़ा बहुत भी पूरा हुआ है दो सौ वर्षों में? उसके पिता ने कहा, थोड़ा बहुत? कुछ भी पूरा नहीं हुआ। वहीं खड़ा हूँ जहाँ मैं आया था इस पृथ्वी पर, तब था। तो उस बेटे ने कहा, मैं खुशी से जाता हूँ, कोई विषाद नहीं है। कहते हैं, ऐसा एक हजार साल तक हुआ। वह बूढ़ा एक हजार साल तक जिया। उसके बेटे बदलते चले गये, उसकी उम्र बढ़ती चली गयी, और जब हजारवें वर्ष मौत आयी तो वह मौत थक चुकी थी, लेकिन वह बूढ़ा नहीं थका था। और तब मौत ने कहा, बस, अब नहीं। अब काफी हो गया। मैं कब तक आती रहूँगी? तुम अनुभव से सीखते नहीं। उस बूढ़े ने कहा, लेकिन अभी तो कुछ भी नहीं हुआ।

अभी तो सब वहीं का वहीं रिक्त और खाली है। थोड़ा समय, शायद मिल जाय तो कुछ हो सके। यह बात वह दस बार मौत से कह चुका है। इस बूढ़े पर हँसना मत आप, यह कहानी नहीं है, यह हम सबकी कहानी है। यह बात हम भी मौत से हजार बार कह चुके हैं, याद नहीं है। उसको भी याद नहीं था। अगर उसको भी याद होता कि दस बार यही बात कही जा चुकी है, तो शायद दसवीं बार कहने में हिम्मत टूट जाती। वह भी भूल चुका था। उसने मौत से कहा, कौन-सा अनुभव? कैसा अनुभव? उस मौत ने कहा, मैं दस बार आ चुकी हूँ। उस बूढ़े ने कहा, मुझे कुछ स्मरण नहीं।

असल में दुःख को हम भुलाना चाहते हैं और हम भूल जाते हैं। जो जो दुःख है उसे हम भूल जाते हैं, जो जो सुख है उसे हम सम्हाल कर रखते हैं। जो जो दुःख है उसे हम छोटा करते जाते हैं, जो जो सुख है उसे हम धीरे-धीरे मन में बड़ा करते जाते हैं। इसलिए बूढ़ा आदमी कहता है बचपन में बहुत सुख था। बच्चा नहीं कहता। बच्चा कहता है, कितने जल्दी बड़े हो जायँ। बड़े के पास बहुत सुख मालूम पड़ता है। कोई बच्चा सुखी नहीं है, लेकिन सब बूढ़े कहते हैं, बचपन में बहुत सुख था। बच्चे बहुत जल्दी बड़ा होना चाहते हैं। सब बच्चे परेशान हैं क्योंकि उनको हजार तरह के दुःख हैं। बच्चा होना भी बड़ा दुःख है बड़ों की दुनिया में। चारों तरफ बड़े और एक छोटा बच्चा है। बड़े गंभीर चर्चा कर रहे हैं और उसे खेलने की आज्ञा नहीं है। और उस छोटे बच्चे को बड़ों की गंभीर चर्चा एकदम निपट नासमझी की मालूम पड़ती है, खेल सार्थक मालूम पड़ते हैं। सब तरफ दबाव है, सब तरफ आज्ञा है—यह मत करो, वह मत करो। बच्चा बहुत जल्दी बड़ा होना चाहता है कि कब वह बड़ा हो जाय और दूसरों से कह सके कि यह मत करो। लेकिन सब बूढ़े कहते हैं कि बचपन बहुत सुखद था। उन्होंने बचपन के सब दुख भुला दिये। अब यह बड़े मजे की बात है, एक आदमी अगर सौ बार मरा, दस बार मौत आयी हो, तो भूल नहीं सकता। आप जन्मे थे, आपको याद है जन्म की? निश्चित ही एक बात तो कम-से-कम पक्की है ही, पीछे के जन्मों को हम छोड़ दें, इस बार आप जन्मे हैं इतना तो पक्का ही है। लेकिन आपको कोई याद है जन्म की? जन्म इतनी दुखद प्रक्रिया है कि उसकी याद मन नहीं बनाता। माँ जितना दुःख झेलती है जन्म देते वक्त, वह कुछ भी नहीं है जो बेटा झेलता है। और माँ तो बहुत जल्दी प्रसव-पीड़ा से मुक्त हो जायेगी। कोई कारण नहीं है, लेकिन बेटा, वह जो दुःख झेलता है वह इतना भारी है कि उसे अपनी स्मृति से हटा देता है। हमारी स्मृति पूरे वक्त चुनाव कर रही है कि क्या बचाना है, क्या हटाना है। अगर हमें कोई बताने वाला

न हो कि हम जन्मे हैं तो हमें पता ही नहीं चलेगा कि हम जन्मे हैं। लेकिन जन्म के वक्त आप थे, जन्म की घटना आपके ऊपर घटी है। जन्म की घटना से आप गुजरे हैं लेकिन उसकी स्मृति कहाँ है? उसकी स्मृति नहीं है, क्योंकि वह बहुत दुखद घटना है। माँ के अंधकारपूर्ण पेट से परम विश्राम से, जहाँ श्वास लेने की तकलीफ भी नहीं है, जहाँ जीने के लिए भी कुछ करना नहीं पड़ता, सिर्फ जीना है। मनोवैज्ञानिक तो हजार-हजार अनुभव के आधार पर कहते हैं कि मनुष्य को मोक्ष की जो कल्पना आयी है, वह गर्भ की स्मृति से आयी है। गर्भ में इतनी शांति है, इतना मौन हैं, टोटल साइलेंस है, कोई श्रम नहीं है। कुछ करना नहीं है, सिर्फ होना है। उस होने की दुनिया से एक झटके के साथ उस दुनिया में आना जहाँ जिन्दा रहना हो तो श्वास भी लेनी पड़ेगी, भोजन भी लेना पड़ेगा, रोना भी पड़ेगा, चिल्लाना भी पड़ेगा। जहाँ जिन्दगी कठिनाइयों से गुजरेगी। उतने बड़े शांत और सुखद अनुभव से इतने बड़े दुःखद अनुभव में प्रवेश! बच्चा भूल जाता है, लेकिन गहरे हिप्नोसिस में आपको याद दिलाया जा सकता है कि आप जब पैदा हुए तो आपका अनुभव क्या था। गहरे सम्मोहन की अवस्था में या गहरे ध्यान में, आपको माँ के पेट के अनुभव भी याद दिलाये जा सकते हैं। अगर आपकी माँ गिर पड़ी थी तो वह जो चोट लगी थी उसकी खबर भी आप तक पहुँचेगी। वह भी आपकी स्मृति का हिस्सा है, लेकिन हम भूल गये हैं। ठीक ऐसे ही हम भी बहुत बार मरे हैं, जैसा वह राजा ययाति, जिसकी मैं कहानी कह रहा था दस बार मौत आयी लेकिन भूलता चला गया। उसने कहा, मैं तो तुझे पहचानता ही नहीं। मैं तो सोचता हूँ, तू पहली बार ही आयी है, थोड़ा समय मुझे मिल जाय तो मैं अपनी आकांक्षाएँ पूरी कर लूँ। लेकिन उस मौत ने कहा, नहीं अब बहुत हो चुका। तुम हजार साल के अनुभव से नहीं सीखे तो करोड़ वर्ष के अनुभव से भी नहीं सीख सकते हो।

जिसे सीखना है वह एक अनुभव से भी सीखता है, जिसे नहीं सीखना है वह अनंत अनुभव से भी नहीं सीख सकता। हम ऐसे ही लोग हैं, जिन्होंने सीखना बन्द कर दिया है। जिनको हम महावीर या कृष्ण या बुद्ध कहते हैं, ये वे लोग हैं जो जिन्दगी के अनुभव से सीखते हैं। हम ऐसे लोग हैं जो सीखते ही नहीं। हम ऐसे लोग हैं जिन्होंने जान-बूझ कर आँखें बन्द कर ली हैं। हम सीखेंगे नहीं और वही करते चले जायेंगे जो हम कर रहे थे और वही भोगते चले जायेंगे जो हम भोग रहे थे—वही आशाएँ, वही विषाद, वही पुनरावृत्ति और वही चक्कर! कभी आपने शायद ख्याल न किया हो—हमारा शब्द है संसार। संसार का मतलब होता है—दी ह्वील, चक्र, जिसमें वही स्पोक बार-बार लौट आते हैं, जिसमें वही

धुरी बार-बार घूमने लगती है। वह जो भारत के झंडे पर चक्र बनाया हुआ है, वह उन राजनीतिज्ञों को पता नहीं है कि किसलिए बना लिया है। बस, अशोक के स्तंभ पर बना था तो सोचा कि अशोक का चिह्न है, उसे चुन लिया है। लेकिन राजनीतिज्ञ कैसे समझ पायेगा कि वह चक्र एक धार्मिक प्रतीक है और जितने चक्र में राजनीतिज्ञ रहता है, उतने चक्र में तो कोई नहीं रहता है। वह तो चक्के के भीतर है, वह तो स्पोक को पकड़ कर बैठा हुआ है, घूम रहा है पूरे वक्त। कुछ दूसरे उसको छुड़ाने की भी कोशिश कर रहे हैं तो भी छूटता नहीं है। वे दूसरे भी उसे छुड़ा कर स्पोक को खुद पकड़ लेना चाहते हैं और उन्हें कभी ख्याल नहीं आता है कि जिस भाँति वे उसको छुड़ाने की कोशिश कर रहे हैं, कुछ लोग उनको छुड़ाने की भी कोशिश करेंगे, जब वे पकड़ लेंगे। वह चल रहा है पूरे वक्त।

जगत्, संसार एक चक्र है, जिस चक्र में हम वही किये चले जाते हैं, वही दोहराये चले जाते हैं। कल भी आपने क्रोध किया था और कल भी आप पछ-ताये थे और कल भी आपने कसमें खायी थीं कि अब क्रोध नहीं करेंगे। आज फिर आप क्रोध करेंगे, आज फिर आप पछतायेंगे, आज फिर आप कसम खायेंगे कि क्रोध नहीं करेंगे। कल भी यही होगा, परसों भी यही होगा। हम आदमी हैं या मशीन हैं। यंत्र अगर घूमता चला जाय तो समझ में आता है, आदमी भी घूमता चला जाय तो शक होता है कि आदमी है या मशीन है। लोग कहते हैं आदमी जो है वह रेशनल एनिमल है, लेकिन आदमी इसका कोई सबत नहीं देता। आदमी को देख कर बिल्कुल पता नहीं चलता कि आदमी बुद्धिमान् है। आदमी से ज्यादा बुद्धिहीन प्राणी खोजना बहुत मुश्किल है। आदमी सीखता ही नहीं। जो बड़ी-से-बड़ी बात सीखने की हो सकती है जिन्दगी में, वह यह है कि परिग्रह एक व्यर्थता है। वस्तुएँ व्यर्थता हैं, यह मैं नहीं कह रहा हूँ। आपके घर में कुर्सी है, यह व्यर्थ है यह मैं नहीं कह रहा हूँ। कुर्सी कैसे व्यर्थ हो सकती है? कुर्सी तो बैठने में काम आ सकती है। मैं यह नहीं कह रहा कि आपके पास मकान है वह व्यर्थ है। मकान रहने के काम आ सकता है, आता है, आना चाहिए। वस्तुएँ व्यर्थ हैं, यह मैं नहीं कह रहा। वस्तुओं की अपनी सार्थकता है। जो मैं कह रहा हूँ वह यह कह रहा हूँ कि वस्तुओं से हम अपने को भर लेंगे, इसकी कोई सार्थकता नहीं है। वस्तुएँ हमारी आत्माएँ बन जायेंगी, इसका कोई उपाय नहीं है। परिग्रह के प्रति अगर हम थोड़ी-सी भी आँख खोल कर देख लें तो हम अचानक पायेंगे कि हम उस दुनिया में प्रवेश करने लगे हैं जहाँ पजेसिवनेस छूटती है और खोती है और विदा हो जाती है। फिर जिस दिन हम पकड़ छोड़ देते हैं

उस दिन एक घटना घटती है कि हम अकेले ही रह जाते हैं। न तो पत्नी रह जाती है, न मित्र रह जाते हैं, न भाई रह जाते हैं, न मकान रह जाता है। ये सब अपनी जगह हैं। ये एक बड़े खेल के हिस्से हैं और यह खेल वैसा है जैसा लोग शतरंज खेलते हैं। उसमें कोई घोड़ा होता है, कोई हाथी होता है, लेकिन कभी कोई इस भ्रम में नहीं पड़ता कि इस घोड़े पर सवारी की जाय। शतरंज के खेल और नियम के भीतर घोड़ा बड़ा सार्थक है, उसकी अपनी उपयोगिता है, उसकी अपनी चाल है, उसकी अपनी हार और जीत है, लेकिन कभी-कभी लोग शतरंज में भी पागल हो जाते हैं।

इजिप्त में एक सम्राट् शतरंज में पागल हो गया। वह धीरे-धीरे इतना पागल हो गया कि उसने असली घोड़े छुड़वा दिये अपने अस्तबलों से और शतरंज के घोड़े बँधवा दिये। वह दिन-रात घोड़े हाथियों में जीने लगा शतरंज के, और जब उस पर हमला होने की संभावना आयी तो उसने कहा कि शतरंज के सब घोड़े लगा दो। तब तो उसके दरबार के लोगों ने कहा कि अब दिमाग पूरा खराब हो गया है। अब बड़ी मुश्किल है, इसको कैसे ठीक किया जाय, यह कैसे ठीक होगा? तो देश के सब विचारक समझदार लोग बुलाये गये और उनसे पूछा गया कि यह कैसे ठीक होगा। उन्होंने कहा कि इसने शतरंज के खेल को जिन्दगी समझ लिया है। एक बूढ़ा आदमी जो उन बुद्धिमानों में आया हुआ था वह उठ कर जाने लगा। उसने कहा, सम्राट् ठीक नहीं होगा। क्योंकि जो ठीक करने आये हैं, इनमें, और उसमें बहुत फर्क नहीं है। यह सम्राट् शतरंज के खेल को जिन्दगी समझे हुए है और ये लोग जिन्दगी को शतरंज का खेल बनाये हुए हैं। ये दोनों एक से हैं। इनमें बहुत फर्क नहीं है। उस बूढ़े को सम्राट् ने पकड़ लिया है कि तुम कुछ बुद्धिमानी की बात कह रहे हो। अगर हम दोनों एक से पागल हैं तो तुम कुछ बुद्धिमानी की बात कर रहे हो। मैं क्या करूँ? तो उसने कहा, कि तुम कुछ मत करो, तुम सिर्फ शत-रंज खेलो, जोर से शतरंज खेलो। बड़े शतरंज के खिलाड़ी बुलाये गये और राजा को उनके साथ शतरंज खेलने में लगा दिया गया। साल भर में ऐसा हुआ कि राजा ठीक हो गया और उसके साथ खेलने वाले पागल हो गये। हो ही जायेंगे। राजा ठीक हो गया, क्योंकि साल भर दिन-रात खेलता ही रहा। खेलते-खेलते उसको दिखायी पड़ा कि न तो घोड़ा घोड़ा है, न हाथी हाथी है, सब खेल है। हम बहुत खेल लिये हैं, हम सब खेल रहे हैं लेकिन हमें कभी शतरंज का घोड़ा, शतरंज का घोड़ा नहीं मालूम पड़ता, घोड़ा ही मालूम पड़ता है।

सारे संबंध जिन्दगी के, शतरंज का खेल हैं। उसके नियम हैं। उनका पालन करना चाहिए। और ध्यान रहे, जो आदमी जिन्दगी को खेल समझता है, उसको

नियम-पालन करना बड़ा आसान हो जाता है, कठिनाई ही नहीं रह जाती। तब यह सब गंभीरता नहीं रह जाती, इसमें कोई मामला ही नहीं रह जाता। अगर यह खेल है, तो गंभीरता गयी। दैन यू आर नाट सीरियस। लेकिन कुछ लोग खेल को ही जिन्दगी बना लेते हैं तब वे खेल में भी गंभीर हो जाते हैं, तब खेल में भी तलवारें चल जाती हैं। शतरंज के खिलाड़ियों में तलवारें बहुत दफा चल गयी हैं। अगर शतरंज के घोड़े और हाथी कुछ भी समझते होंगे तो इन खिलाड़ियों पर बहुत हँसे होंगे कि ये क्या कर रहे हैं। लकड़ी के घोड़े हाथियों पर तलवारें चला रहे हैं। जिन्दगी की हमारी जो व्यवस्था है वह सारी की सारी व्यवस्था अपनी जगह ठीक है। वस्तुएँ वस्तुएँ हैं, हैविंग हैविंग है, धन धन है, पद पद है। आत्मा कोई भी नहीं। इस स्मरण का नाम परिग्रह से मुक्ति है। परिग्रह छोड़ कर भाग जाने का नाम मुक्ति नहीं है। इसलिए जिन्हें हम संन्यासी कहते हैं साधारणतया वे इनवर्टेड परिग्रही हैं, वे शीर्षासन करते हुए परिग्रही हैं, वे उल्टे खड़े हो गये हैं, हैं वे आप ही। जो आप हैं, वही वे हैं। बल्कि कई मामलों में वे आपसे भी ज्यादा गंभीर हैं। मैं तो सोच ही नहीं सकता, संन्यासी और गंभीर! यह असंभव होना चाहिए। संन्यासी अगर गंभीर है तो उसका मतलब है कि वह सिर्फ शीर्षासन लगा कर खड़ा हो गया है, संसारी है। गंभीरता का मतलब यह है कि संसार बड़ा सार्थक है। वह जो नासमझियों का जाल है वह बड़ा कीमती है। इसको कीमत हम दो तरह से दे सकेंगे। इसमें उतर के––डूब के, इसको छाती से पकड़ कर। इसे हम एक और तरह से कीमत दे सकते हैं। इससे भयभीत होकर, इससे भाग कर।

एक अंतिम बात। तीन संन्यासी हुए चीन में। जिन्हें मैं संन्यासी कहने को राजी हूँ क्योंकि उन तीन संन्यासियों से ज्यादा गैर-गंभीर आदमी शायद ही हुए हों। उनको लोग जानते नहीं, उनका नाम ही लोगों को पता नहीं है, क्योंकि नाम वगैरह सब खेल की बातें हैं। उन संन्यासियों ने कभी अपना नाम नहीं बताया कि उनका नाम क्या है। जब कोई उनसे पूछता है कि तुम कौन हो तो वे एक-दूसरे की तरफ देखकर हँसते हैं और इतने जोर से खिलखिला कर कि पूछने वाला भी थोड़ी देर में हँसने लगता। धीरे-धीरे उनकी हँसी गाँव भर में फैल जाती है। लोग उनको इतना ही जानते हैं कि वे थ्री लाफिंग सेंट्स, तीन हँसते हुए संन्यासी हैं। उनका नाम कुछ रहा नहीं जब भी कोई उनसे सवाल पूछता तो वे हँसते। उन्होंने हँसने से एक उत्तर दिया। जब भी कोई पूछता कि आप हँसते क्यों हैं हमारे सवाल से, तो वे कहते हैं कि तुम इतनी गंभीरता से पूछते हो कि तुम्हें दिया गया कोई भी उत्तर खतरनाक सिद्ध होगा। तुम उसको भी गंभीरता से पकड़ लोगे।

परिग्रह नासमझी है, तो परिग्रह के खिलाफ साधा गया त्याग भी नासमझी है। चीजों को पकड़ना पागलपन है, तो चीजों को छोड़ कर भागना कम पागलपन नहीं है। चीजों के प्रति मोहग्रस्त होना पागलपन है तो चीजों के प्रति विरक्त होना कम पागलपन नहीं है। ये दोनों ही पागलपन हैं, एक-दूसरे की तरफ पीठ किये खड़े हैं। और दोनों पागल सोच रहे हैं यही कि कहीं दूसरा मजा न ले रहा हो। मुझे संन्यासी मिलते हैं जो मुझे कहते हैं कि कई दफा मन में ऐसा संदेह उठने लगता है कि कहीं हमने भूल तो नहीं की? उठेगा, स्वाभाविक है। संन्यासी के मन में यह ख्याल उठना स्वाभाविक है कि कहीं मैंने भूल तो नहीं की जो मैं सब छोड़ कर भाग आया। जो लोग भोग रहे हैं, कहीं बड़े आनंद में तो नहीं हैं? और जो भोग रहे हैं वे बड़े परेशान हैं, वे संन्यासियों के पैर छूते रहते हैं जाकर। वे सोचते रहते हैं कि संन्यासी बड़े आनंद में होगा। हम तो बड़े दुःख में पड़े हैं। यह भ्रांति चलती रहती है और हमारे चेहरे धोखा देते रहते हैं। संन्यासी एकांत में संदिग्ध होता है, भीड़ में आश्वस्त हो जाता है। जब लोग उसके पैर छूते ह, तब पक्का हो जाता है कि नहीं, ये लोग आनन्द में नहीं हो सकते, नहीं तो मेरे पैर छूने न आते। एकांत में संदिग्ध हो जाता है, जब भीड़ हट जाती है। इसलिए अगर किसी को अपने झूठे संन्यास को बनाये रखना हो तो भीड़ अनिवार्य है, अन्यथा बहुत मुश्किल है संन्यास को बनाये रखना। अकेले में संन्यासी संदिग्ध हो जाता है, कि पता नहीं, गाँव के लोग आनंद न लूट रहे हों, इसलिए धीरे-धीरे सब संन्यासी गाँव में आ जाते हैं। वहाँ दोहरे फायदे होते हैं। एक तो लोग सामने रहते हैं, दूसरे लोग पैर छूते हैं, आदर देते हैं तो संन्यासी को भरोसा आता है कि नहीं, अगर ये आनंद में होते तो इधर मेरे पास न आते। त्यागी के पास आ रहे हैं। पर संन्यासी को पता नहीं कि इनके भी संदेह के क्षण हैं। ये भी संदेह से भर जाते हैं कि पता नहीं, संन्यासी आनंद न लूट रहा हो। असल में दूसरा आनन्द लूट रहा है, यह ख्याल हम सबके मन में होता ही है; क्योंकि दूसरों का हम चेहरा जानते हैं और अपनी आत्मा जानते हैं। अपना दुख परिचित होता है, दूसरे के मुखौटे परिचित होते हैं।

नहीं, न तो वस्तुएँ पकड़ने योग्य हैं न वस्तुएँ छोड़ने योग्य हैं। इसलिए अपरिग्रह का अर्थ विराग नहीं है, अपरिग्रह का अर्थ त्याग नहीं है। यह आखिरी बात ठीक से ख्याल में ले लेंगे, अन्यथा मैंने परिग्रह के संबंध में जो कहा कहीं वह आपको त्यागी न बना दे। कहीं आप संसार को छोड़ कर न भागने लगें, कहीं आप घर द्वार को छोड़ कर जंगल की राह न ले लें।

नहीं, जो परिग्रह को समझ लेगा वह पायेगा कि कुछ पकड़ा ही नहीं जा सका है, छोड़ना किसे है ? छोड़ कैसे सकते हैं, छोड़ने का उपाय कहाँ है ? जो दूसरा है वह अन्य है; वह वस्तु है, उसे छोड़ा नहीं जा सकता। मकान मकान है। अपरिग्रह का मतलब यह है कि मकान के भीतर एक आदमी हो, चाहे बाहर हो, नानपजेसिव हो गया। उसका कोई मालकियत का भाव नहीं रहा। अब वह मालिक नहीं है। उसने बाहर की दुनिया में मालकियत खोजनी बन्द कर दी। उसका यह मतलब नहीं है कि बाहर की दुनिया को छोड़ कर वह भाग गया। भागेगा कहाँ ? सब जगह जहाँ जायेगा, बाहर की दुनिया है। और अगर कोई घर छोड़ कर जायेगा और एक वृक्ष के नीचे बैठ जायेगा और कल दूसरा आदमी आकर संन्यासी से कहेगा कि हटो यहाँ से इस वृक्ष के नीचे हम धुनी रमाना चाहते हैं, तो वह कहेगा बन्द करो बकवास। इस पर मेरा पहले से कब्जा है। यहाँ मैं पहले से हूँ। यह वृक्ष मेरा है, झंडा देखो वृक्ष के ऊपर लगा है। यह मंदिर मेरा है, यह आश्रम मेरा है। परिग्रह से भागा हुआ आदमी फिर परिग्रह पैदा कर लेगा। क्योंकि परिग्रह से भागा हुआ आदमी समझ नहीं पाया कि परिग्रह क्या है। वह फिर पैदा कर लेगा। हाँ, जनता उसको रोकेगी, अनुयायी उसको रोकेंगे। वह सब तरह की चेष्टा करेंगे कि परिग्रह पैदा न हो जाय। वे कहेंगे मकान मत बनने दो। वे कहेंगे मंदिर मत बनने दो, वे कहेंगे यह आश्रम मत बनने दो, वे कहेंगे, यह मत बनने दो, वह मत बनने दो। वे सब तरफ से रोकेंगे। तब संन्यासी, बहुत सूक्ष्म रास्ते खोजेगा। रुपये इकट्ठा करना मुश्किल हो जायेगा तो वह सूक्ष्म रास्ते खोजेगा। वह अनुयायी इकट्ठा करने लगेगा। और जो मजा किसी को तिजोरी के सामने रुपया गिनने में आता है वही मजा उसको अनुयायियों को गिनने में आने लगेगा कि कितने अनुयायी हो गये। गिनता रहेगा, कहेगा सात सौ, कि हजार, कि दस हजार कि लाख, कि दो लाख कितने अनुयायी हैं, कितने शिष्य हैं ? कान फूंकने लगेगा, मंत्र बाँटने लगेगा और इकट्ठा करने लगेगा आँकड़ा। आँकड़े का मजा है--रुपये में हो, कि अनुयायियों में हो, कोई फर्क नहीं पड़ता।

जिन्दगी भागने से नहीं समझी जा सकती। जो भागता है वह नासमझी में भाग गया। जिन्दगी जहाँ है वहीं समझने की जरूरत है। और जब समझ ली जाती है तो अचानक हम पाते हैं कि कुछ चीजें एकदम से बिदा हो गई। छोड़नी नहीं पड़ती। एकदम से अचानक हम पाते हैं कि पति पत्नी अपनी जगह हैं, लेकिन बीच से मालकियत चली गई। अब पति पति नहीं है, सिर्फ मित्र रह गया। अब पत्नी पत्नी नहीं है, दासी नहीं है, सिर्फ मित्र रह गई। वह बीच का सम्बन्ध अचानक खो गया। अपरिग्रह का मतलब है हमारे और व्यक्तियों, हमारे और

वस्तुओं के बीच के सम्बन्ध का रूपान्तरण। मालकियत गिर गई। बीच से मालकियत गिर जाय मेरे और किसी के बीच, तो अपरिग्रह फलित हो गया। इसलिए अपरिग्रह त्याग से बहुत कठिन बात है। अपरिग्रह वैराग्य से बहुत कठिन बात है। वैराग्य बड़ी सरल बात है। क्योंकि वह दूसरी अति है और मन का पैंडुलम दूसरी अति पर बहुत जल्दी जा सकता है। जो आदमी बहुत ज्यादा खाना खाता है, उससे उपवास कराना सदा आसान है। जो आदमी स्त्रियों के पीछे पागल है उसे ब्रह्मचर्य की कसम दिलवाना बहुत आसान है। जो आदमी बहुत क्रोधी है, उसे अक्रोध का व्रत दिलवाना बहुत आसान है। लेकिन ध्यान रहे, वह अक्रोध का व्रत भी क्रोधी आदमी ले रहा है। इसलिए जल्दी ले रहा है। अगर कम क्रोधी होता तो सोच के लेता। अगर और कम क्रोधी होता तो शायद लेता ही नहीं। क्योंकि व्रत लेने के लिए भी क्रोध होना जरूरी है। अभी तक वह दूसरे पर क्रोधित था, अब अपने पर क्रोधित हो गया है, और कोई फर्क नहीं है। अभी तक वह दूसरे की गर्दन दबाता था, अब वह व्रत लेकर अपनी गर्दन दबायेगा कि अब मैं क्रोध नहीं करूँगा। अब देखूँ कि कैसे क्रोध होता है ? अब वह अपनी गर्दन पकड़ लेगा। एक अति से दूसरी अति सदा आसान है। लेकिन जो मध्य में ठहर जाते हैं, वे धर्म को उपलब्ध हो जाते हैं।

कन्फ्यूशस एक गाँव गया। गाँव के लोगों ने कहा कि हमारे गाँव में एक बुद्धिमान् आदमी है आप जरूर उनके दर्शन करें। कन्फ्यूशस ने कहा उसे तुम बुद्धिमान् क्यों कहते हो। तो उन्होंने कहा कि वह बहुत विचारशील है। कन्फ्यूशस ने कहा कि ज्यादा विचारशील तो नहीं है। उन्होंने कहा कि ज्यादा, बहुत ज्यादा विचारशील है। एक काम करता है तो तीन बार सोचता है। तो कन्फ्यूशस ने कहा कि मुझे उस आदमी से बचाओ। मैं वहाँ न जाऊँगा। पर उन्होंने कहा, आप कैसी बातें कर रहे हैं। क्या वह आदमी बुद्धिमान् नहीं है ? कन्फ्यूशस ने कहा वह जरा ज्यादा बुद्धिमान् हो गया, जरा ज्यादा अनबैलेंस्ड हो गया। जो आदमी एकबार सोचता है वह अति पर है, जो तीन बार सोचने लगा वह दूसरी अति पर चला गया। दो बार काफी है। कन्फ्यूशस का मतलब कुल इतना है कि जो बीच में ठहर जाय, काफी है। वह जो गोल्डन मीन है, वह जो बीच में ठहर जाना है न त्याग, न भोग। न वस्तुओं की पकड़, न वस्तुओं का छोड़। अपरिग्रह जब फलित होता है, मध्य में फलित होता है। ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं। इसमें अपरिग्रह की आप बिलकुल चिन्ता न करें। आप चिन्ता करें परिग्रह को समझने की। और ध्यान रखें, परिग्रह को छोड़ने की चिन्ता भर मत करना, परिग्रह को समझने की चिन्ता करना। परिग्रह क्यों, क्या, कौन सी कमी पूरी कर रहा है ? दो चीजें।

जिस दिन दीख जायेंगी कि परिग्रह में मैं अपनी आत्मा की भर्ती और पूर्ति करना चाहता हूँ, आत्मा के खालीपन और रिक्तता को भरना चाहता हूँ, यह असम्भव है। एक, और दूसरी बात यह कि जिस चीज से हम बँधते हैं, बाँधते हैं उससे बँध भी जाते हैं और गुलाम हो जाते हैं। और तीसरे हमारे सारे अतीत का अनुभव कहता है कि सब मिल जाय फिर भी कुछ नहीं मिलता है। खाली के खाली रह जाते हैं। यह स्मरण पूरा हो जाय तो आप अचानक पायेंगे कि आपकी जिन्दगी में अपरिग्रह की किरणें उतरनी शुरू हो गई हैं।

•

अचौर्य

•

तीसरा महाव्रत

हिंसा का एक आयाम परिग्रह है। हिंसक हुए बिना परिग्रही होना असंभव है। और जब परिग्रह विक्षिप्त हो जाता है, पागल हो जाता है, तो चोरी का जन्म होता है। चोरी परिग्रह की विक्षिप्तता है, पजेसिवनेस इट इज गोन मैड। स्वस्थ परिग्रह हो तो धीरे-धीरे अपरिग्रह का जन्म हो सकता है। अस्वस्थ परिग्रह हो तो धीरे-धीरे चोरी का जन्म हो जाता है, स्वस्थ परिग्रह धीरे-धीरे दान में परिवर्तित होता है। अस्वस्थ परिग्रह धीरे-धीरे चोरी में परिवर्तित होता है।

अस्वस्थ परिग्रह का अर्थ है कि अब दूसरे की चीज भी अपनी दिखाई पड़ने लगी, हालाँकि दूसरा अपना नहीं दिखाई पड़ता है। अस्वस्थ परिग्रह का अर्थ है, वह जो पजेसिवनेस है, वह दूसरे को तो दूसरा मानती है, लेकिन दूसरे की चीज को अपना मानने की हिम्मत करने लगती है। अगर दूसरा भी अपना हो जाय तब दान पैदा होता है। और जब दूसरे की चीज भर अपनी हो जाय और दूसरा रह जाय तो चोरी पैदा होती है।

चोरी और दान में बड़ी समानता है। वह एक ही चीज के दो छोर हैं। चोरी में दूसरे की चीज अपनी बनाने की कोशिश है, दान में दूसरे को अपना बनाने की कोशिश है। चोरी में हम दूसरे की चीज छीन कर अपनी कर लेते हैं। दान में हम अपनी चीज दूसरे की कर देते हैं। एक अर्थ में दान चोरी का प्रायश्चित है। अक्सर दानी कभी अतीत का चोर होता है, और अक्सर भविष्य का दानी हो सकता है। यह जो चोरी है यह अगर चीजों तक ही संबंधित होती तो बहुत बड़ी बात न थी, जहाँ तक वस्तुओं की चोरी का संबंध है, इससे कानून राज्य न्याय समाज का जोड़ है। धर्म से तो किसी और गहरी चोरी का सम्बन्ध है।

ऐसा हो सकता है कि एक दिन आ जाय कि संपत्ति ज्यादा हो अेफ्युलन्ट हो तो वस्तुओं की चोरी बंद हो जाय, लेकिन उस दिन भी चोरी का महत्त्व रहेगा। इसलिए साधारणतः जिसे हम धार्मिक व्यक्ति कहें वह जिस चोरी से रोकने की बात कर रहा

है वह चोरी तो बहुत जल्दी खत्म हो जायेगी। लेकिन कोई महाव्रत कभी खत्म नहीं हो सकता। इसलिए अचोरी का कोई और गहरा अर्थ भी है जो सदा सार्थक रहेगा, सदा प्रासंगिक रहेगा। अगर किसी दिन पूरी तरह समाज समृद्ध हो गया तो चोरी बंद हो जायेगी। जो वस्तुओं की चोरी है, वह अधिकतर गरीबी के कारण पैदा होती है। लेकिन और भी चोरियाँ हैं। महाव्रत का संबंध उन गहरी चोरियों से है। तो पहले उस गहरी चोरी को हम थोड़ा समझें जिसमें हम सब सम्मिलित हैं वे लोग भी जिन्होंने कभी किसी की वस्तु नहीं चुराई होगी।

चोरी का अर्थ ही क्या है? चोरी का गहरा आध्यात्मिक अर्थ है कि जो मेरा नहीं है उसे मैं मेरा घोषित करूँ। बहुत कुछ मेरा नहीं है जिसे मैंने मेरा घोषित किया है, यद्यपि मैंने कभी किसी की चोरी नहीं की।

शरीर मेरा नहीं है, लेकिन मैं मेरा घोषित करता हूँ। चोरी हो गई, अध्यात्म की दृष्टि से चोरी हो गई। शरीर पराया है, शरीर मुझे मिला, शरीर मेरे पास है, जिस दिन मैं घोषणा करता हूँ कि मैं शरीर हूँ उसी दिन चोरी हो गई आध्यात्मिक अर्थों में। मैंने किसी चीज पर दावा कर दिया जो दावा अनधिकार पूण है, मैं पागल हो गया। लेकिन हम सभी शरीर को अपना, अपना ही नहीं, बल्कि मैं ही हूँ ऐसा मान कर चलते हैं।

माँ के पेट में एक तरह का शरीर था आपके पास। आज अगर आपके सामने उसे रख दिया जाय तो खाली आँखों से देख नहीं सकेंगे। बड़ी खुर्दबीन चाहिए जिससे दिखाई पड़ सकेगा और कभी मानने को राजी नहीं होंगे कि कभी यह मैं था। फिर बचपन में एक शरीर था जो रोज बदल रहा है। प्रतिदित शरीर वह रहा है। अगर हम एक आदमी के जिंदगी भर के चित्र सामने रखें तो वह आदमी हैरान हो जायेगा कि इतने शरीर मैं था और मजे की बात है कि इन सारे शरीरों में यात्रा करते वक्त हर शरीर को उसने जाना कि यह मैं हूँ।

एक अमरीकन अभिनेता का जीवन मैं पढ़ता था। कई बार संन्यासियों के जीवन थोथे होते हैं उनमें कुछ भी नहीं होता। जिन्हें हम तथाकथित अच्छे आदमी कहते हैं, अक्सर उनके पास कोई जिंदगी नहीं होती, इसलिए अच्छे आदमी के आसपास कहानी लिखना बहुत मुश्किल है। उसके पास कोई जिंदगी नहीं होती। वह थोथा, समतल भूमि पर चलने वाला आदमी होता है, कोई उतार-चढ़ाव नहीं होते। अक्सर जिसको हम बुरा आदमी कहते हैं, उसमें एक जिंदगी होती है, उसमें उतार-चढ़ाव होता है और अक्सर बुरे आदमी के पास जिंदगी के गहरे अनुभव होते हैं। अगर वह उनका उपयोग कर ले तो संत बन जाय। अच्छा आदमी कभी संत नही बन पाता। अच्छा आदमी बस अच्छा आदमी ही रह जाता

है। सज्जन, सज्जन याने मिडीयोकर, जिसने कभी बुरे होने की भी हिम्मत नहीं की। वह कभी संत होने का सामर्थ्य नहीं जुटा सकता।

इस अभिनेता की मैं जिंदगी पढ़ रहा था। उसकी जिंदगी बड़े उतार-चढ़ाव की जिंदगी है। अँधेरे की, प्रकाशों की, पापों की, पुण्यों की—लेकिन उसका अंतिम निष्कर्ष देख कर मैं दंग रह गया। अंतिम उसने जो निष्कर्ष दिया है, पूरी जिंदगी में जो बात उसे सबसे ज्यादा बेचैन कर सकी है, काश वह आपको भी बेचैन कर सके। आखिरी बात उसने यह कही है कि मेरी सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि मैंने इतने प्रकार के अभिनय किये, जिंदगी में मैंने इतनी एक्टिंग की, मैं इतने व्यक्ति बना, कि अब मैं तय नहीं कर पाता हूँ कि मैं कौन हूँ? कभी वह शेक्सपीयर के नाटक का कोई पात्र था, कभी वह किसी और कथा का कोई पात्र था। कभी किसी कहानी में वह संत था, और कभी किसी कहानी में वह पापी था। जिंदगी में इतने पात्र बना वह कि आखिर में वह कहता है कि मुझे अब समझ नहीं पड़ता है कि असल में मैं कौन हूँ? इतने अभिनय करने पड़े, इतने चेहरे ओढ़ने पड़े, कि मेरा खुद का चेहरा क्या है वह मुझे कुछ पता नहीं रहा।

दूसरी बड़ी गहरी बात उसने कही है कि जब भी मैं किसी पात्र का अभिनय करने मंच पर जाता हूँ तब मैं ऐट-इज होता हूँ क्योंकि वहाँ स्वयं होने की जरूरत नहीं होती। एक अभिनय निभाना पड़ता है तो मैं एक सुविधा में होता हूँ, मैं निभा देता हूँ। 'टू स्टेप इन ए रोल इज ईजीयर' उसने लिखा है कि एक अभिनय में कदम रखना आसान है। 'बट टु स्टेप्स आऊट आफ इट बीकम्स कोम्प्लेक्स'। जैसे ही मैं मंच से उतरता हूँ उस अभिनय को छोड़ कर वैसे मेरी दिक्कत शुरू हो जाती है कि अब मैं कौन हूँ? तब तक तो तय होता है कि मैं कौन था, अब मैं कौन हूँ? हजार अभिनय करके यह तय करना उसे मुश्किल हो गया है कि मैं कौन हूँ? कहना चाहिए कि उसकी जिंदगी में अचोरी का क्षण निकट आ गया है। लेकिन हमारी जिंदगी में हमें पता नहीं चलता। सच बात तो यह है कि कोई अभिनेता इतना अभिनय नहीं करता, जितना अभिनय हम सब करते हैं। मंच पर नहीं करते हैं, इससे ख्याल पैदा नहीं होता। बचपन से लेकर मरने तक अभिनय की लंबी कहानी है। ऐसा एक भी आदमी नहीं है जो अभिनेता नहीं है। कुशल-अकुशल का फर्क हो सकता है, लेकिन अभिनेता नहीं है, कोई ऐसा आदमी नहीं है। और अगर कोई अभिनेता न रह जाय तो उसके भीतर धर्म का जन्म हो जाता है।

हम चेहरे चुरा कर जीते हैं। हम जिस शरीर को अपना मानते हैं वह भी अपना नहीं है और हम जिस व्यक्तित्व को अपना मानते हैं वह भी हमारा

नहीं है। वह सब उधार है। और जिन चेहरों को हम अपने ऊपर लगाते हैं; जो परसोना, जो मुखौटे लगा कर हम जीते हैं वह भी हमारा चेहरा नहीं है।

बड़ी से बड़ी जो आध्यात्मिक चोरी है वह चेहरों की चोरी है, व्यक्तित्वों की चोरी है।

बेन्जामिन फ्रेंकलिन ने अपने बचपन का एक संस्मरण लिखा। लिखा है कि बचपन से ही मुझे पूर्ण होने की इच्छा है, तो मैंने बारह नियम तय किये थे जिनका उपयोग करके मैं पूर्ण हो जाऊँगा। उन बारह नियमों में समस्त धर्मों ने जो श्रेष्ठ बातों की चर्चा की है वह बात आ जाती है, संकल्प है, शील है, शांति है, मौन है, सद्भाव है, वह सारे बारह, सब अच्छी बातें उसमें आ जाती हैं। बेन्जामिन फ्रेंकलिन ने लिखा है कि मैं इनको पाऊँ कैसे? तो मैंने एक-एक आचरण का अभ्यास करना शुरू कर दिया। मैंने बुरा बोलना बंद कर दिया—और जब बुरा आये तो उसे दबाने लगा, और रोज-रोज हिसाब-किताब रखने लगा कि आज मैंने कोई बुरी बात तो नहीं कही। आज मैंने किसी चीज में असंयम तो नहीं किया। आज मैंने कोई अनाचार तो नहीं किया। आज मैंने चोरी की बात तो नहीं सोची। आज मैंने आलस्य तो नहीं किया। वह हिसाब रखने लगा और रोज-रोज अभ्यास साधने लगा, फिर अभ्यास सध गया। और बेन्जामिन फ्रेंकलिन ने लिखा है कि मैंने अपने आचरण को पूरा साध लिया और तब एक ईसाई साधु ने उसे कहा कि तुमने सब तो साध लिया लेकिन तुम बड़े अहंकारी हो गये हो। स्वभावतः जिसने सब साध लिया वह अहंकारी हो जायेगा। साधा है, सिद्ध हो गया है तो अहंकार हो जायेगा। तो उस ईसाई फकीर ने कहा तेरहवाँ नियम और जोड़ दो—ह्यूमिलिटी, विनम्रता। बेंजामिन फ्रेंकलिन ने कहा कि मैं उसको भी साध लूँगा। उसने फिर ह्यूमिलिटी भी साध ली, उसने विनम्रता भी साध ली। वह विनम्र भी हो गया। लेकिन अपने संस्मरण में उसने एक वचन लिखा है जो बड़ा कीमती है। उसने लिखा है कि अंततः मुझे ऐसा लगा कि जो भी मेरी उपलब्धि है, इट इज जस्ट इन एपियरेन्स, वह सिर्फ दिखावा है। जो भी मैंने साध लिया वह सिर्फ चेहरा बन पाया, वह मेरी आत्मा नहीं बन पायी। स्वभावतः जो भी हम बाहर से साधेंगे वह चेहरा ही बनता है। जो भीतर से आता है वही आत्मा होती है।

हम सब बाहर से ही साधते हैं, धर्म को। अधर्म होता है भीतर, धर्म होता है बाहर। चोरी होती है भीतर, अचोरी होती है बाहर। परिग्रह होता है भीतर, अपरिग्रह होता है बाहर। हिंसा होती है भीतर, अहिंसा होती है बाहर। फिर चेहरे सध जाते हैं। इसलिए धार्मिक आदमी जिन्हें हम कहते हैं उनसे ज्यादा चोर व्यक्तित्व खोजना बहुत मुश्किल है।

चोर-व्यक्तित्व का मतलब यह हुआ कि जो वे नहीं हैं—वे अपने को माने चले जाते हैं। दिखाये चले जाते हैं। आध्यात्मिक अर्थों में चोरी का अर्थ है जो आप नहीं हैं उसे दिखाने की कोशिश, उसका दावा। हम सब वही कर रहे हैं, सुबह से साँझ तक हम दावे किये जाते हैं।

वह अमरीकी अभिनेता ही भूल गया हो कि मेरा ओरीजिनल-फेस, मेरा अपना चेहरा क्या है, ऐसा नहीं है; हम भी भूल गये हैं। हम सब बहुत चेहरे तैयार रखते हैं। जब जैसी जरूरत होती है वैसा चेहरा लगा लेते हैं। और जो हम नहीं हैं, वह हम दिखाई पड़ने लगते हैं। किसी आदमी की मुस्कराहट देख कर भूल में पड़ जाने की जरूरत नहीं है कि भीतर आँसू न हो। अक्सर ऐसा तो होता है कि मुस्कराहट आँसूओं को छिपाने का इन्तजाम ही होती है। किसी आदमी को प्रसन्न देख कर ऐसा मान लेने की कोई जरूरत नहीं है कि उसके भीतर प्रसन्नता का झरना बह रहा है, अक्सर तो वह उदासी को दबा लेने की व्यवस्था होती है। किसी आदमी को सुखी देख कर ऐसा मान लेने का कोई कारण नहीं है कि वह सुखी है, अक्सर तो दुःख को बुलाने का आयोजन होता है। आदमी जैसा भीतर है वैसा बाहर दिखाई नहीं पड़ रहा है, यह आध्यात्मिक चोरी है। और जो आदमी इस चोरी में पड़ेगा उसने वस्तुएँ तो नहीं चुराई, व्यक्तित्व चुरा लिये। और वस्तुओं की चोरी बहुत बड़ी चोरी नहीं है, व्यक्तित्वों की चोरी बहुत बड़ी चोरी है। इसलिए जिस आदमी को अचोरी में उतरना हो उसे पहली बात यह समझ लेनी चाहिए कि वह भूल कर भी कभी व्यक्तित्व न चुराये। महावीर से जो व्यक्तित्व लेगा वह चोर हो जाएगा। बुद्ध से जो व्यक्तित्व लेगा वह चोर हो जायगा। जीसस से जो व्यक्तित्व लेगा वह चोर हो जाएगा। कृष्ण से जो व्यक्तित्व लेगा वह चोर हो जाएगा।

चोर का मतलब ही यह है कि जिसने जो है वह नहीं, बल्कि जो नहीं था उसको ओढ़ लिया। अब दूसरा कोई आदमी पृथ्वी पर दुबारा महावीर नहीं हो सकता, हो ही नहीं सकता। वे सारी की सारी स्थितियाँ दुबारा नहीं दोहराई जा सकती जो महावीर के होने के वक्त हुई। न तो वह पिता खोजे जा सकते हैं फिर से, जो महावीर के थे। न वह माँ खोजी जा सकती है फिर से, जो महावीर की थी। न वह आत्मा दुबारा खोजी जा सकती है जो महावीर की थी। न वह शरीर खोजा जा सकता है जो महावीर का था। न वह युग खोजा जा सकता है जो महावीर का था। न वे चाँद-तारे खोजे जा सकते हैं। कुछ भी नहीं खोजा जा सकता इस जगत् में, जो क्षण बह गया वह बह गया। इसलिए दूसरा कोई आदमी जब भी महावीर होने की कोशिश करेगा तो वह चोर महावीर हो जाएगा। दूसरा कोई आदमी

अगर कृष्ण होने की कोशिश करेगा तो वह चोर कृष्ण हो जाएगा। कोई आदमी जब भी दूसरा आदमी होने की कोशिश करेगा तो आध्यात्मिक चोरी में पड़ जाएगा। उसने व्यक्तित्व चुराने शुरू कर दिये और धर्म का हम यही मतलब समझे बैठे हैं। किसी के जैसे हो जाओ, अनुयायी बनो, अनुकरण करो, अनुसरण करो, पीछे चलो, ओढ़ो, किसी को भी ओढ़ो, खुद मत रहो बस किसी को भी ओढ़ो। इसलिए कोई जैन है, कोई ईसाई है, कोई हिन्दू है, कोई बौद्ध है। यह कोई भी धार्मिक नहीं हैं। यह धर्म के नाम पर गहरी चोरी में पड़ गये हैं। अनुयायी चोर होगा ही आध्यात्मिक अर्थों में, उसने किसी दूसरे व्यक्तित्वों को चुरा के अपने पर ओढ़ना शुरू कर दिया जो वह नहीं है। पाखंड, हीपोक्रेसी परिणाम होगा। इसलिए जितना तथाकथित धार्मिक समाज, उतना पाखंडी, उतना हिपोक्रेट। उसका कारण है, क्योंकि वहाँ कोई व्यक्ति वही नहीं है, जो वह है। वहाँ सभी व्यक्ति वही है, जो वह नहीं है। ऐसा समझें कि कोई व्यक्ति अपनी जगह नहीं है सब किसी और की जगह खड़े हैं। कोई व्यक्ति अपनी आँखों से नहीं देख रहा है सब किसी और की आँखों से देख रहे हैं। कोई व्यक्ति अपने होठों से नहीं हँस रहा है, सब व्यक्ति किसी और से जी रहे हैं। जो असंभव है। न तो मैं किसी की जगह जी सकता हूँ और न किसी की जगह मर सकता हूँ और न ही मैं किसी के होठ से हँस सकता हूँ। मेरा अनुभव अनिवार्य रूपेण निजी होगा और निजी होगा उसी दिन मैं अचोरी को उपलब्ध होऊँगा, उसके पहले नहीं हो सकता। मैं जिस दिन स्वयं ही रह जाऊँगा मेरे पास कोई ओढ़ा हुआ व्यक्तित्व नहीं होगा, उस दिन मैं अचोरी को उपलब्ध हो जाऊँगा, अन्यथा मैं चोर बना रहूँगा।

ध्यान रहे, वस्तुओं के चोर को तो हम जेलों में बंद कर देते हैं, व्यक्तित्वों के चोरों के साथ हम क्या करें ? जिन्होंने पर्सनालिटीज चुराई है उनके साथ क्या करें ? उन्हें हम सन्मान देते हैं उन्हें हम मस्जिदों में, मंदिरों में, गिरजाघरों में आदृत करते हैं। ध्यान रहे, वस्तुओं के चोर ने कोई बहुत बड़ी चोरी नहीं की है, व्यक्तित्व के चोर ने बहुत बड़ी चोरी की है। और वस्तुओं की चोरी बहुत जल्दी बंद हो जाएगी, क्योंकि वस्तुएँ ज्यादा हो जाएँगी, चोरी बंद हो जाएगी, लेकिन व्यक्तियों की चोरी जारी रहेगी। हम चुराते ही रहेंगे, दूसरों को ओढ़ते ही रहेंगे। इसे आप जरा सोचना कि आप स्वयं होने की हिम्मत जिंदगी में जुटा पाये, या नहीं जुटा पाये। अगर नहीं जुटा पाये तो आपके व्यक्तित्व की अनिवार्य आधार-शिला चोरी की होगी। आपने कोई और बनने की कोशिश तो नहीं की ? आपके चेतन-अचेतन में कहीं तो भी किसी और जैसा हो जाने का आग्रह तो नहीं है ? अगर है, तो उस आग्रह को ठीक से समझ कर उससे मुक्त हो जाना जरूरी है। अन्यथा अचोरी

या नो-थेफ्ट की स्थिति नहीं पैदा हो जाएगी। और यह चोरी ऐसी है कि इससे आपको कोई रोक ही नहीं सकता, क्योंकि व्यक्तित्व अदृश्य चोरियाँ हैं। धन चुराने जाओगे पकड़े जाओगे। व्यक्तित्व चुराने जाएँगे कौन पकड़ेगा ? कैसे पकड़ेगा ? कहाँ पकड़ेगा ? और व्यक्तित्व की चोरी ऐसी है कि किसी से कुछ छीनते भी नहीं और आप चोर हो जाते हैं। व्यक्तित्व की चोरी आसान और सरल है। सुबह से उठकर देखना जरूरी है, कि मैं कितनी बार दूसरा हो जाता हूँ। हम व्यक्ति नहीं हो पाते व्यक्तित्वों के कारण। पर्सनालिटीज के कारण पर्सन पैदा नहीं हो पाता।

यह शब्द पर्सनालिटी बड़ा अच्छा शब्द है—यूनान में ग्रीक ड्रामा से आया हुआ शब्द है। यूनान में जो यूनानी ड्रामा होता था उसमें प्रत्येक अभिनेता को अपने ऊपर एक मुखौटा, एक चेहरा ओढ़ना पड़ता था। उस चेहरे को परसोना कहते थे। और उस चेहरे से बने व्यक्तियों को पर्सनालिटी कहते थे। पर्सनालिटीज का मतलब था जो आप नहीं हैं। इसलिए जितनी बड़ी पर्सनालिटी हो उतनी बड़ी चोरी होगी। बहुत कुछ चुराया हुआ होगा। एक साधु है, वह महावीर की पर्सनालिटी लिये हुए हैं। ठीक महावीर जैसा नंग खड़ा हो गया है। ठीक महावीर जैसा चलता, उठता, बैठता है। ठीक महावीर जैसा खाता-पीता बैठता है। ठीक महावीर का शब्द बोलता है। बिलकुल महावीर हो गया। लेकिन यह होना बाहर से ही हो सकता है। भीतर से तो वह सिर्फ वही हो सकता है जो है, यह पर्सनालिटी है।

इसलिए चोरों के पास अक्सर अपना व्यक्तित्व होता है। साधुओं के पास होता ही नहीं। अगर जेलखाने में जायें तो और चोरों की आँखों में झाँकें तो ऐसा लगेगा कि वह जो है, है। मंदिरों में जायें और साधुओं की आँखों में झाँकें तो लगगा कि वह जो नहीं है—वहीं है।

बुरा आदमी अक्सर वही होता है,जो है। क्योंकि बुरे को कोई भी ओढ़ता नहीं। अच्छा आदमी अक्सर वही होता है जो नहीं है क्योंकि अच्छे को ओढ़ने का मन होता है। अच्छा होना तो बहुत कठिन है। ओढ़ना तो बहुत आसान है। अच्छा होना तो तपश्चर्या है, अच्छा होना आर्डूअस है। लेकिन अच्छे को ओढ़ लेना खेल है, सुविधा है, बहुत कन्वीनिएण्ट है। फिर अच्छे होने के साथ बड़ी कठिनाइयाँ हैं; क्योंकि दुनिया अच्छी नहीं है, इसलिए अच्छा होने वाला आदमी दुनिया के साथ मुसीबत में पड़ जाता है। टु बी मोरल इन ए इममोरल सोसायटी, टु बी गुड इन ए बैड सोसायटी, एक अनैतिक समाज में नैतिक होना बड़ी दुविधा है। एक बुरे समाज में अच्छे होना बड़ी कठिनाई मोल लेना है। यही है

तपश्चर्या। साधु की तपश्चर्या नंगा खड़ा हो जाना नहीं है। साधु की तपश्चर्या भूखा रह जाना नहीं है। यह बड़ी सस्ती और सरल बात है, जो कोई भी नासमझ साध सकता है। असल में समझ हो तो साधना मुश्किल, ना-समझी हो तो साधना आसान। साधु की तपश्चर्या है, टु बी मोरल इन ए इममोरल वर्ल्ड, नैतिक होना अनैतिक जगत् में, तपश्चर्या है। क्योंकि चारों तरफ से चोट पड़ेगी। इसलिए सुविधापूर्ण है, वस्त्र ओढ़ लेना नैतिकता है, वस्त्र ओढ़ो अनैतिक रहो। अनैतिक रहो दुनिया से कोई तकलीफ नहीं होगी। नैतिकता के वस्त्र ओढ़ो बाजारों में, सार्वजनिक स्थानों में।

इसलिए हमारे पास दो तरह के चेहरे हैं। प्राइवेट फेसेस, पब्लिक फेसेस। और नियम है कि वह जो व्यक्तिगत चेहरा है, निजी चेहरा है, उसे कभी सार्वजनिक स्थान में मत ले जाना, कोई नहीं ले जाता। कभी-कभी शराब वगैरह पी ले तो भूल हो जाती है। अन्यथा नहीं। कोई शराब पी ले तो भूल जाता है पब्लिक-प्लेस है और प्राइवेट फेस, तो तकलीफ होती है। इसलिए भले आदमी शराब पीने से बहुत डरते हैं। बुरे आदमी उतने नहीं डरते हैं, क्योंकि उनका चेहरा सब जानते हैं। अक्सर लोग पूछते हैं भला हूँ, साधना करने आया हूँ, साधना करने ही क्यों आता अगर भला न होता? हालाँकि हालत उल्टी है भला आदमी किसलिए साधना करने जाएगा?

गुरजिएफ एक फकीर हुआ। है उसकी शर्त ही यही थी——वह कहता, साधना करने आये हो तो पहली साधना यह रहेगी कि पन्द्रह दिन शराब पीनी पड़ेगी। अक्सर तो भला आदमी भाग जाता। कल्पना भी नहीं कर सकते कि कोई फकीर और शराब पीने के लिए कहेगा। लेकिन अर्थ-पूर्ण है गुरजिएफ की बात। वह कहता था पंद्रह दिन तो मैं शराब पिलाऊँगा ताकि मैं तुम्हारा प्राइवेट फेस देख सकूँ अन्यथा मैं किसके साथ बात करूँ। अन्यथा मैं किसके साथ व्यवहार करूँ, अन्यथा मैं किसको बदलूँ? क्योंकि तुम जो दिखाई पड़ रहे हो उसको मैंने बदला तो बेकार मेहनत हो जाएगी, क्योंकि तुम तो यह हो ही नहीं, यह बदलाहट बेकार। यह रंगरोगन मैं कर दूंगा, यह तुम्हारे मुखौटे पर हो जाएगा, तुम्हारे चेहरे से उसका कोई सम्बन्ध नहीं और मुखौटा बिलकुल अलग चीज है तुम उसे कभी भी उतार कर रख सकते हो, तुम उसे बदल भी सकते हो। तुम मुझसे बेकार मेहनत मत करवाओ। पहले मुझे तुम्हारा ओरिजिनल फेस, तुम्हारा असली चेहरा देख लेने दो। अक्सर अच्छा आदमी तो भाग जाता शराब का नाम सुन कर ही। भागना ही बता देता कि उस आदमी के भीतर कुछ छिपा है जो प्रकट होने से डरेगा। लेकिन अगर कोई रुक जाता तो बड़ी हैरानी होती। पन्द्रह दिन

गुरजिएफ उसे शराब ही पिलाये जाता। जितनी ज्यादा से ज्यादा पिला सकता, पिलाता।

कैसा दुर्भाग्य कि आदमी के असली चेहरे को खोजने के लिए उसे बेहोश करना पड़ता है। इतनी परतें हैं नकली चेहरों की, चोरी इतनी गहरी है, इतनी लम्बी है, अनंत जन्मों की है कि असली चेहरा बहुत-बहुत पीछे छिप गया है। एक मुखौटा उतारो तो दूसरा उसके नीचे है। प्याज की तरह आदमी हो गया है। एक छिलका निकालो फिर छिलका और छिलका निकालो फिर छिलका। आप इस भ्रम में न रहना प्याज को खोज लेंगे आप छिलके निकालते जावें, निकालते जावें, बस छिलके ही निकालते चले जाएँगे। आखिर में कुछ भी नहीं बचेगा। आखिरी छिलका निकल जाएगा। आप पूछोगे प्याज कहाँ है? पता चलेगा छिलकों का जोड़ ही प्याज था, प्याज का अपना कोई अस्तित्व न था।

हम करीब-करीब अनंत जन्मों में इतने व्यक्तित्वों की चोरी किये हुए हैं, हमने इतने मुखौटे ओढ़े हैं कि हमारा अपना तो कोई चेहरा नहीं रह गया है। अगर हमारे छिलके उतारे जाएँगे तो आखिर में शन्य रह जाएगा। लेकिन उसी शून्य से शुरू करना पड़ेगा, क्योंकि उसी शून्य से अचोरी में गति होगी। उसके पहले कोई गति नहीं हो सकती। अगर एक आदमी को यह पता चल जाय कि मेरा कोई चेहरा ही नहीं है, तो बड़ी उपलब्धि है यह।

आपसे मैं कहना चाहूँगा कि आप चोरी से बचने की कोशिश का नाम अचोरी मत समझ लेना। चोरी से जो बचा है, वह भी चोरी से बचा हुआ चोर है। चोरी जिसने की है वह चोरी में फँस गया चोर है। वह दोनों चोर हैं। चोरी उनके भीतर है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक की चोरी व्यवहार तक चली गयी है, एक की चोरी मन तक रह गयी है। लेकिन चोरी का जो असली आध्यात्मिक, स्पिरिच्युअल अर्थ है वह यह है कि क्या आपके पास अपना चेहरा है? नहीं खोज पाएँगे। आइने के सामने खड़े होंगे, वह जो चेहरा दिखाई पड़ेगा, पता चलेगा वह किसी और का है, हालाँकि अब तक उसे हमने अपना ही समझा है। फिर ऐसा भी नहीं है कि हमारे पास एक ही चेहरा हो, जिससे हम चौबीस घंटे काम चलाते हैं। चौबीस घंटे हमको, फंक्शनली, इतने बहुत से चेहरे बदलने पड़ते हैं—— पति के सामने पत्नी को कुछ और ही होना पड़ता है; पति पत्नी के सामने कुछ और होता है, अपनी पत्नी के सामने कुछ और होता है, पड़ोसी की पत्नी के सामने कुछ और होता है। तत्काल चेहरा बदल जाता है। अपने मालिक के सामने कुछ और होता है, अपने नौकर के सामने कुछ और होता है। अगर मेरे इस तरफ मालिक को बिठाल दिया जाय और मेरे इस तरफ नौकर को

बिठाल दिया जाय तो मेरा नौकर मेरे आधे चेहरे में कुछ और देखेगा, मेरा मालिक मेरे आधे चेहरे में कुछ और देखेगा--मेरे दो चेहरे एक साथ होंगे। इधर नौकर को दबाता हुआ हूँगा। इधर मालिक की तरफ मैं पूँछ हिलाता हुआ रहूँगा। यह मेरे एक ही साथ मुझे दोनों काम करने पड़ेंगे। तो कई दफे बहुत लोगों के बीच आप होते हैं तो आप गिरगिट हो जाते हैं। इसके साथ कुछ और, उसके साथ कुछ और, इसके साथ कुछ और। बड़ी कठिनाई हो जाती है।

मैंने सुना है, नसरुद्दीन के बाबत। नसरुद्दीन की दो प्रेयसियाँ थीं। विनम्र आदमी रहा होगा, नहीं तो दो प्रेयसी पर कौन रुकता है। दोनों से अलग-अलग मिलता था। दो प्रेयसी से एक साथ मिलना बहुत कठिन है क्योंकि दोनों को ऐसे चेहरे दिखाये हैं, जो वायदा किया है कि एक को ही दिखाया है। प्रत्येक से कहा, तेरे सिवाय किसी को प्रेम नहीं करता। लेकिन प्रेयसियाँ भी बहुत होशियार हैं, वे तत्काल पता लगा लेती हैं। वे प्रेमी की इतनी खोज नहीं करतीं जितनी प्रेमी की प्रेयसियों की खोज करती हैं। उन दोनों ने पता लगा लिया और एक दिन नसरुद्दीन को फँसा लिया और नसरुद्दीन से कहा, आज तो एक साथ हम दोनों को जवाब दो। नसरुद्दीन ने कहा, गरीब आदमी को इस तरह मत फँसाओ। क्योंकि तुम दोनों अलग-अलग हो तो बड़ी सुविधा रहती है, इतनी देर में मैं चेहरा बदल लेता हूँ। लेकिन उन दोनों ने तो उसे पकड़ लिया और कहा, तुम जवाब दो कि हम दोनों में सुन्दर कौन है? नसरुद्दीन ने कहा तुम एक से एक बढ़कर सुन्दर हो, तुम एक दूसरे से बढ़कर सुन्दर हो। पता नहीं प्रेयसियाँ समझ पाईं कि नहीं। शायद ही समझ पायी होंगी, क्योंकि प्रेम से बुद्धि का बहुत कम संबंध है। पता नहीं आप भी समझ पाये कि नहीं? नसरुद्दीन कह रहा है तुम एक दूसरे से बढ़कर सुन्दर हो! क्या कहना! बड़ी गहरी मजाक नसरुद्दीन आदमी से कर रहा है। दोनों चेहरे एक साथ सँभाले हुए हो तो बेचारा क्या कर सकता है? गिरगिट हो गया वह। कह रहा है तुम दोनों एक दूसरे से बढ़कर हो।

चौबीस घंटे में हम चौबीस चेहरे बदल रहे हैं। चौबीस नहीं और ज्यादा बदलने पड़ते हैं, और यह चेहरों की बदलाहट तनाव पैदा करती है। टेन्शन जो है वह चेहरों की बदलाहट है। जिस आदमी के पास एक चेहरा है उस आदमी को तनाव नहीं होता। तनाव का कोई कारण नहीं रहा। तनाव सदा होता है चेहरों को बार-बार बदलने से। इतनी बार बदलना पड़ता है कि बहुत मुश्किल हो जाती है और बीच-बीच जो गैप पड़ता है, जब आप एक चेहरे को उतार के दूसरा लाते हैं तो बीच का जो गैप होता है वह बहुत चिंता पैदा करता है; क्योंकि उस वक्त आपके पास कोई चेहरा नहीं होता है, उस वक्त आप बड़ी कठिनाई

में होते हैं। वह ठीक कहता है अमरीकी अभिनेता 'टु स्टेप इन ए रोल इज ईजीअर बट टू स्टेप आउट'--बाहर होना किसी रोल के, बड़ा मुश्किल है, लेकिन हमें तो चौबीस घंटा करना पड़ता है। चेहरों को बदलना पड़ता है, बदलना पड़ता है, बदलना पड़ता है।

लेकिन आदमी बहुत होशियार है, जैसे पहले गाड़ियों में कन्वेन्शनल गेयर था तो बदलना पड़ता था अब ऑटोमैटिक गेयर है। उसे नहीं बदलना पड़ता। जो बहुत कुशल लोग हैं उनके पास ऑटोमैटिक गेयर हैं। वे चेहरे बदलते नहीं, चेहरे बदल जाते हैं। चेहरे के बदलने के हमने ऑटोमैटिक गेयर तय कर लिये हैं, अब हमें बदलना नहीं पड़ता। नौकर आया कि चेहरा बदला। मालिक आया कि चेहरा बदला। पत्नी आई कि चेहरा और हुआ। प्रेयसी आई कि चेहरा और हुआ। मित्र आया तो चेहरा और हुआ। अब चेहरा बदलता रहता है। पुराने आदमी को धार्मिक होने में बड़ी सुविधा थी। उसके पास कन्वेन्शनल गेयर थे। उसको चेहरा बदलना पड़ता था इसलिए यह भी पता चलता था कि मैं चेहरा बदल रहा हूँ। आधुनिक सभ्यता ने कन्वेन्शनल गेयर हटा दिये, जिनको बदलना पड़ता था। अब ऑटोमैटिक गेयर है। सभ्य आदमी और असभ्य आदमी में मैं इतना ही फर्क करता हूँ, कन्वेन्शनल गेयर और ऑटोमैटिक गेयर का, और कोई फर्क नहीं करता हूँ।

असभ्य आदमी को चेहरा बदलना पड़ता है। बदलना पड़ने की वजह से उसे हर बार यह पता चलता है कि मैं कुछ कर रहा हूँ, यह मैं क्या कर रहा हूँ उसे कठिनाई होती है। सभ्य आदमी का मतलब है, सभ्यता का अर्थ है, ऐसा प्रशिक्षण जो आपको चेहरा बदलने के कष्ट से बचा लेता है। ऐसी शिक्षा जो चेहरे बदलने के कष्ट से बचा देती है। और चेहरे अपने आप बदलने लगते हैं। इसलिए सभ्य आदमी का धार्मिक होना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि उनको चोरी का पता ही नहीं चलता। उसे गैप का पता ही नहीं चलता, वह जो दो चेहरे के बीच में क्षण गुजरता है, जहाँ खाली जगह छूट जाती है उसका उसे पता नहीं चलता। तनाव जो बढ़ता जाता है सभ्य आदमी का, क्योंकि तनाव चेहरे बदलने से पैदा होते हैं। लेकिन यह चेहरे न बदलूँ यह बोध पैदा नहीं होता, क्योंकि गेयर ऑटोमैटिक है। वह अपने आप हो जाता है, इसलिए जितना सभ्य आदमी, उतना धर्म से दूर जाता हुआ मालूम पड़ता है।

जीसस, बुद्ध या महावीर एक असभ्य दुनिया में पैदा हुए थे। सभ्य दुनिया में हम बुद्ध, महावीर, जीसस जैसे आदमी पैदा नहीं कर पा रहे हैं। उसके कारण हैं। बेचैनी तो उससे भी ज्यादा है। असभ्य आदमी इतना बेचैन नहीं था। बेचैनी तो

बहुत है, लेकिन यह पता नहीं चलता कि बेचैनी क्यों है ? उसका हमें बोध कम हो गया। तो मैं आप से कहना चाहूँगा अचोरी को समझने के लिए अपने चेहरे बदलने के प्रति आपको सजग होना पड़ेगा। सजग होने की एक तरकीब है और सजग होने का एक अर्थ है । आप जितने सजग होते हैं किसी भी चीज के प्रति, उतनी उसकी गति कम हो जाती है।

कभी आपने फिल्म देखी है। उसकी कभी मशीन बिगड़ जाय, मशीन के बिगड़ने का मतलब क्या ? मशीन धीमी चलने लगे, प्रोजेक्टर धीमा चलने लगे तो परदे पर फिल्म की गति क्षीण हो जाती है। तो जो आदमी एकदम से हाथ उठाता मालूम पड़ रहा था परदे पर, फिर दस आदमी धीरे-धीरे हाथ उठाते हुए मालूम पड़ते हैं और हाथों के बीच गैप हो जाता है। जब मैं भी हाथ उठाता हूँ तो यह हाथ एक झटके में नहीं उठता, सिर्फ आपकी आँख इतनी गति को पकड़ नहीं पाती अन्यथा हाथ को बीस पोजीशन लेनी पड़ती इतने हटने में। लेकिन अगर गौर से देखें, और मशीन आपकी थोड़ी धीमी हो जाय, और गौर से देखने से धीमी हो जाती है। किसी भी चीज को अगर बहुत गौर से देखें तो प्रक्रिया धीमी हो जाती है, दो कारण से क्योंकि गौर से देखने से पहले तो आपको खड़ा होना पड़ता है। आपको रुकना पड़ता है। अगर आप अपने चेहरे बदलने की प्रक्रियाओं को गौर से देखें तो प्रक्रिया धीमी हो जाएगी और आप देख सकेंगे कि अब आपका चेहरा बदला और अपने पर हँस सकेंगे कि चेहरा बदल लिया गया।

अचोरी के महाव्रत में आप अपने चेहरे बदलने को देखना। एक आदमी दूकान से मंदिर की ओर जा रहा है। उसे पता रखना चाहिए कि कब उसने चेहरा बदला, किस स्टेप पर, मंदिर की किस सीढ़ी पर चेहरा बदला गया। दूकान पर वही तो चेहरा नहीं था जो मंदिर में होता है, बदलाहट कहीं तो हुई है । जरूर कहीं उसने चेहरा बदला है। पुरुष वेनीटी बैग वगैरह साथ नहीं रखते, न स्त्रियाँ साथ रखती हैं। बस से उतरने के पहले चेहरा बदलती हैं, साथ में इन्तजाम भी रखती हैं। वैसा बहुत भीतरी इन्तजाम हम सबके पास है—जहाँ से हम चेहरे निकालते हैं और बदलते हैं। जब आप घर से मंदिर की तरफ जा रहे हैं तब आप जरा होशपूर्वक जानना कि चेहरा किस जगह बदलता है। किस जगह दूकानदार हटता है और साधक आता है। किस जगह दूकान पर बैठा हुआ आदमी जाता है और मंदिर में प्रवेश करने वाला आदमी आता है। जहाँ आप जूते उतारते हैं मंदिर के बाहर वहीं तो यह परिवर्तन नहीं होता ? जरूरी नहीं है कि वहीं हो। असल में जूते उतरवाये इसलिए जाते हैं वहाँ कि कृपया अब चेहरे बदलो, अब वह जगह आ गयी जहाँ आपका पुराना ढंग अब नहीं चलेगा, जूता यहाँ उतारो ! जहाँ

लिखा रहता है 'कृपया जूता यहाँ' वहीं नीचे तख्ती होनी चाहिए 'कृपया चेहरा यहाँ'। कई लोग अपने चेहरे लिये भीतर घुस जाते हैं। जूता लिये मंदिर में चले जायें उतनी अपवित्रता नहीं होगी, चेहरा लिये चले गये तो ज्यादा होगी। लेकिन उसका किसी को पता नहीं चलता।

आपको मैं कहना चाहूँगा कि जब आप चेहरे बदलते हों तो आप जरा होश रखना कि आप कब बदलते हो और इसका बड़ा मजा होगा। अब तक आप दूसरों पर हँसे हैं, तब आप अपने पर हँसना शुरू हो जायेंगे। और जब आप जान के चेहरा बदलेंगे तो चेहरा बदलना मुश्किल हो जायेगा, और धीरे-धीरे आप कहेंगे कि यह क्या पागलपन है ? यह मैं क्या अभिनय कर रहा हूँ ? धीरे-धीरे चेहरा बदलना कठिन हो जायगा और जिस दिन चेहरा बदलना कठिन होगा और बीच का अंतराल बढ़ेगा, और कभी-कभी आप बिना चेहरे के रह जायेंगे तब आप का ओरिजिनल फेस जन्मेगा। आपके भीतर आपका चेहरा आना शुरू होगा। तो एक तो चौबीस घंटे बदलते हुए चेहरों का ख्याल रखना, और दूसरा किसी का चेहरा महावीर का, बुद्ध का, कृष्ण का, क्राइस्ट का, अपना बनाने की कोशिश मत करना। भूल कर मत करना। अनुयायी बनना ही मत, अन्यथा चोर बने बिना कोई उपाय ही नहीं।

अनुयायी दो चोरी करता है। वह चेहरा चुराता है जो सिनसिअर अनुयायी होता है। कहना चाहिए जो सिनसियर चोर होता है जो बहुत ईमानदारी से चोरी करता है, वह चेहरे चुराता है। जो बेईमानी से चेहरे चुराते हैं वह चेहरे नहीं चुराते, सिफ विचार चुराते हैं। वह महावीर का चेहरा नहीं ओढ़ता, सिर्फ महावीर का विचार पकड़ लेता है। पंडित के पास सिर्फ विचार की चोरी होती है, तथाकथित साधु के पास चेहरों की चोरी होती है। ध्यान रखना, कुछ कमचोर भी हैं। वह कहते हैं, चेहरा तो मुश्किल है महावीर का लगाना, लेकिन अहिंसा परमधर्म है। यह तो हम अपने भीतर लिख ही सकते हैं, महावीर का शास्त्र तो पढ़ ही सकते हैं, कृष्ण का चेहरा लगाकर जरा कठिनाई है, लेकिन कृष्ण की गीता तो कंठस्थ कर ही सकते हैं।

तो दो तरह की चोरी है—विचार की, चेहरे की। चेहरे की चोरी वाले आदमी को हम बहुत सिनसियर चोर और ईमानदार चोर कहते हैं। एक आदमी ने जैसा विचारा वैसा किया भी। ध्यान रखें, जिसने विचार से कुछ किया है वह आदमी चेहरा ओढ़ लेगा। धर्म का कोई संबंध किसी सिद्धांत को तय करके उसके अनुसरण करने से नहीं है। नहीं तो बेन्जामिन फ्रेंकलिन वाली घटना घटेगी, एपियरेन्सेज पैदा हो जायेंगे, दिखावे पैदा हो जायेंगे।

अक्सर हम कहते हैं—जो विचारते हो उसके अनुसार आचरण करो। यह चोर बनाने का सूत्र है, लेकिन सिनसियर, ईमानदार चोर इससे पैदा होते हैं। हम लोगों से कहते हैं जो विचारते हैं उसका आचरण भी करो, पर हमें पहले यह तो पता लगा लेना चाहिए कि कहीं विचार चोरी से तो नहीं आया है? अन्यथा आचरण और भी गहरी चोरी में ले जायेंगे। जब हम किसी से कहते हैं इस आदमी का विचार और आचरण बिलकुल एक-सा है, तब हमें पूछ लेना चाहिए कि इसके आचरण से इसका विचार आया है, या इसके विचार से इसका आचरण आया है। अगर इसके आचरण से इसका विचार आया है तब तो यह धार्मिक आदमी है, अगर इसके विचार से इसका आचरण आया है तो यह आदमी चोर है। मगर यह फर्क एकदम से दिखाई नहीं पड़ता।

जब आचरण से कोई विचार आता है, तब उसकी सुगन्ध और है, क्योंकि आचरण आत्मा से आता है। जब किसी विचार से आचरण आता है तो विचार, शास्त्र से आता है। शास्त्र से आया हुआ विचार खुद भी चोरी है, फिर शास्त्र से आये हुए विचार के अनुसार जीवन को ढाल लेना और बड़ी चोरी है। और जो इस तरह की चोरियों में भटक जाते हैं वे आत्मा को खो देते हैं, उन्हें पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि वे कौन हैं? नहीं, मैं नहीं कहता हूँ विचार के अनुसार आचरण। मैं कहता हूँ आचरण के अनुसार विचार। बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे आप क्योंकि आचरण कहाँ से लायें? अगर विचार के अनुसार आचरण हो तो विचार तो मिल सकते हैं, आचरण कहाँ से लायें! आचरण की कोई दूकान नहीं है। आचरण कहीं बिकता नहीं। विचार तो बिकते हैं। विचारों की तो किताबें हैं। आचरणों की कोई किताब नहीं। आचरण का कोई शास्त्र नहीं। इसलिए आचरण आप कहाँ से लायेंगे? अगर महावीर से लायेंगे तो विचार से आया, बुद्ध से लायगे तो विचार से आया, कृष्ण से लायेंगे तो विचार से आया। आचरण कहाँ से लाइयेगा? अगर किसी दूसरे से लायेंगे तो पहले विचार आयेगा। अगर अपने से लायेंगे तो बात और हो जायेगी। तब पहले विचार नहीं आयेगा, पहले अनुभव आयेगा। अगर आपका चोर आचरण है, तो कृपा करके चोर जैसा विचार करिये। इसमें एक सरलता होगी। आपका आचरण चोर का है, तो चोर जैसा ही विचार करिये। और मैं आपसे कहता हूँ कि अगर आपका आचरण चोर का है और विचार भी चोर का है तो आप चोरी के बाहर हो जायेंगे! अगर आपका आचरण चोर का है और विचार अचोरी का है तो आप चोरी के बाहर कभी नहीं होंगे। क्योंकि आप पायेंगे आचरण तो बाहरी चीज है, असली चीज तो विचार है। ऐसे तो अचोर हूँ, मजबूरियों में मैं चोर

बन जाता हूँ। तो धीरे-धीरे साध लूँगा, आचरण भी बदल लूँगा। जब विचार बदल गया तो आचरण भी बदल जायेगा—व्रत ले लूँगा, कसम खा लूँगा। तो आप जिन्दगी भर पोस्टपॉण्ड करते रहेंगे, क्योंकि आप भीतरी रूप से अनुभव करेंगे कि विचार तो अचोरी का है। ऐसे आदमी तो कहते हैं, मैं भीतर से अच्छा हूँ बाहर की परिस्थितियाँ हैं, कारण हैं, जो चोर बना देते हैं, चोर मैं हूँ नहीं।

यह ध्यान रखें आप कि आपका जो व्यवहार है, वह बहुत दूर है आपसे। आपका जो विचार है वह बहुत निकट है। इसलिए अगर हम किसी आदमी को उसके विचार में गलती बतायें तो यह मानने को राजी नहीं होगा। अगर हम किसी आदमी को कहें कि तुम्हारे पैर में फोड़ा है, वह झंझट नहीं करता, वह कहता है इलाज बताइये! लेकिन हम किसी आदमी से कहें कि तुम्हारे मन में रोग है, वह लड़ने को तैयार हो जाता है, वह कहता है, आपकी गलती है देखने में।

शरीर के रोग को आदमी स्वीकार कर लेता है वह बहुत दूर है। मन के फोड़े को वह स्वीकार नहीं करता, वह बहुत निकट है। मन के फोड़े पर चोट उस पर ही चोट है, तो हमने एक तरकीब की है। एक टेक्नीकल तरकीब है हमारी कि हम विचार अच्छे करते हैं, आचरण बुरा करते हैं। इससे सुविधा रहती है। सुविधा यह रहती है कि हम अपने भीतर मानते ही चले जाते हैं कि हम आदमी अच्छे हैं। अगर आपको मैं गाली दूँ तो मैं यह नहीं कहूँगा कि मैं गाली देने वाला आदमी हूँ, मैं तो गाली कभी नहीं देता; लेकिन इस आदमी ने गाली दी इसलिए मुझे गाली देनी पड़ी। यही आदमी जिम्मेदार है मेरी गाली को पैदा करवाने के लिए। जब आप किसी से लड़ते हैं तो आप यह नहीं कहते हैं कि लड़ाई मेरे भीतर है। आप कहते हैं, इस आदमी ने लड़ाई की सिच्युयेशन पैदा कर दी। मुझे लड़ना पड़ा ऐसे आदमी से। मैं लड़ने वाला नहीं हूँ और इसको आप विश्वास भी दे लेंगे क्योंकि आप कभी भीतर लड़ने का विचार तो करते नहीं। विचार तो सदा अहिंसा, अचोरी, अपरिग्रह का करते हैं। शास्त्र तो अहिंसा, अचोरी, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य का पढ़ते हैं। तो विचार तो बड़े अच्छे हैं। आचरण के लिए दूसरा जिम्मेदार हो जाता है। आप बच जाते हैं। फिर एक और सुविधा होती है, जब विचार अच्छे हैं तो आज नहीं कल ताकत जुटा कर संकल्प पैदा करके स्थिति ठीक बनाकर आचरण भी बदल लेंगे तो पोस्टपॉण्डमेण्ट किया जा सकता है।

ध्यान रहे, जिस आदमी को जिन्दगी में ट्रांसफार्मेशन लाना हो उसे पोस्टपॉण्डमेण्ट से बचना चाहिए। स्थगन से बचना चाहिए। वह बहुत कनिंग, बहुत चालाक तरकीब है। एक आदमी कहता है मैं हूँ तो अभी हिंसक लेकिन अहिंसा को मानता हूँ। धीरे-धीरे अहिंसक हो जाऊँगा। वह कहेगा, कल हो जाऊँगा,

परसों हो जाऊँगा। इस जन्म में हो जाऊँगा, अगले जन्म में हो जाऊँगा। वह उसे पोस्टपॉण्ड करता जायेगा। और रहेगा हिंसक, लेकिन हिंसक होने की जो पीड़ा है उससे बच जायेगा; क्योंकि अहिंसक होने की आशा उसकी पीड़ा को कम कर देगी। वह कोन्सोलेटरी है।

तो मैं कहता हूँ—चोरी करना तो चोरी का विचार भी करना। और जितने अचोरी के शास्त्र हों उनमें आग लगा देना। और घर में दीवालों पर लिखना, चोरी परमधर्म है। और अपने हृदय में जानना चोरी परम कर्तव्य है। जो चोरी नहीं करता है वह गलती करता है। अगर आप विचार भी चोरी का करें और आचरण भी चोरी का करें तो आप अपने साथ जी न सकेंगे। क्योंकि तब आपने चोर के साथ कोई भी नहीं जी सकता और आप पक्के चोर हो जायेंगे। पूरे चोर हो जायेंगे। इसके साथ जीना मुश्किल हो जायेगा। आपकी पूरी पर्सनालिटी, आचरण में, विचार में आपका पूरा व्यक्तित्व चोर हो जायेगा। और आपकी आत्मा को इस चोर के साथ जीना मुश्किल हो जायेगा। एक क्षण जीना मुश्किल है, लेकिन जीने की तरकीब है। वह तरकीब यह है कि हम कल ठीक कर लेंगे। विचार तो अच्छे हैं, आचरण बुरा है। आचरण दूसरों के कारण बुरा है, इस तरह के ख्याल को बहुत तरह से प्रमाण भी मिल जाते हैं। जैसे एक आदमी जंगल में चला जाय तो वहाँ क्रोध नहीं करता। वह कहता है—देखो, क्रोध दूसरे लोग करवाते थे। अब मैं जंगल में आ गया अब मैं कहाँ क्रोध कर रहा हूँ। इसलिए साधु जंगल की तरफ भागता है। वहाँ उसे आश्वासन हो जाता है कि मैं बिलकुल अच्छा आदमी हूँ, मैं पहले भी अच्छा आदमी था, बुरे लोगों के बीच में घिरा था, इसलिए सब गड़बड़ हो रही है। इसलिए पति पत्नी को छोड़कर भाग जाता है और सोचता है, देखो अब तो मैं माया-मोह के बाहर हो गया। उस स्त्री की वजह से माया-मोह पैदा हो रहा था। इसलिए पुरुष शास्त्रों में लिखते हैं, नारी नरक का द्वार है। भागे हुए, स्त्री से भाग गये हैं छोड़ कर। अब वह कह रहे हैं—नारी नरक का द्वार है! क्योंकि वही उलझा रही थी, मैं तो सदा ही मुक्त था, इसके लिए कारण मिल जाते हैं। अगर हम किसी कुएँ में बाल्टी डालें और उसमें पानी न हो तो बाल्टी पानी बाहर नहीं ला सकती। बाल्टी उसी पानी को लाती जो कुएँ में होता है। बाल्टी सिर्फ बाहर लाने का काम करती है। जब मैं आपको गाली देता हूँ तो मेरी गाली आप में क्रोध पैदा नहीं कर सकती। गाली में क्रोध पैदा करवाने की ताकत ही नहीं। लेकिन आपके भीतर जो क्रोध के पानी का कुआँ भरा हुआ है, गाली बाल्टी बन जाती है, आपके क्रोध को बाहर ले आती है। गाली जो है वह प्रोडक्टिव नहीं है, वह सिर्फ मेनीफेस्टिंग है। वह किसी चीज को पैदा नहीं

करती सिर्फ, अभिव्यक्त करवाती है। लेकिन एक कुएँ में बाल्टी न डाली जाय तो कुआँ समझेगा अब पानी है ही नहीं, अब निकालते ही नहीं। वह बाल्टी का कसूर था कि बाल्टी भीतर आती थी और पानी की गड़बड़ पैदा होती थी। मैं तो सदा से खाली हूँ, पानी है ही नहीं। देखो, अब कोई बाल्टी नहीं आती। अब कहाँ पानी निकल रहा है? हम सब इसी भ्रम में हैं, अकेले में पता नहीं चलता। असल में हमारे व्यक्तित्व का पता ही हमें दूसरों के साथ चलता है। जब हम दूसरे के साथ हैं तभी पता चलता है कि हमारे भीतर क्या-क्या है। दूसरा मौका बनता है, हमें प्रकट होने का। इसलिए कृपा करके दूसरे को जिम्मेदार मत ठहराना। जिसने भी इस दुनिया में दूसरे को जिम्मेदार ठहराया वह आदमी धार्मिक नहीं हो पाया। धार्मिक आदमी का मतलब है, टोटल रिस्पोंसिबिलिटी इज माइन—पूरे का पूरा दायित्व मेरा है। अधार्मिक आदमी का मतलब है दायित्व किसी और का है, मैं तो भला आदमी हूँ, लोग मुझे बुरा किये दे रहे हैं। कोई आपको बुरा नहीं कर रहा है। दूसरी तरकीब, आप भीतर अच्छे विचार करते रहते हैं इसलिए आप भीतर जानते हैं, भीतर तो मैं अच्छा हूँ। जब दूसरों के संबंध में आता हूँ तो बाहर बुरा हो जाता हूँ। इसलिए यह बाहर से बुरा होना दूसरे के कारण है। अच्छे विचार से बचना, अगर अच्छे आचरण को जन्म देना हो। अगर बुरा आचरण है, कृपा करके बुरा विचार करना, पूरी तरह बुरे हो जाना। पूरी तरह बुरे आदमी के साथ जीना मुश्किल है। आधे अच्छे आदमी के साथ जीने की सुविधा बनायी जा सकती है। आधा अच्छा आदमी बुरे आदमी से भी बुरा है। आधे सत्य पूरे असत्यों से बुरे होते हैं क्योंकि पूरे असत्य से मुक्त हो जायेंगे आप, आधे असत्य से कभी मुक्त नहीं होंगे। क्योंकि वह जो आधा सत्य है वह बंधन का काम करेगा।

तो मैं आपसे कहूँगा, विचार के अनुसार आचरण मत बनाना। आचरण के अनुसार ही विचार करना। ताकि चीजें साफ हों और अगर चीजें साफ हुई तो कोई भी आदमी इस दुनिया में बुरे आदमी के साथ नहीं जी सकता। आप भी अपने बुरे आदमी के साथ नहीं जी सकते और एक दफा यह पता चल जाय कि मैं एक बुरी पर्त के साथ जी रहा हूँ तो इस पर्त को उखाड़ फेंकने में उतनी ही आसानी होगी जैसे पैर से काँटा निकालने में होती है। इस बुरी पर्त को फेंक देने में, इस व्यक्तित्व को, इस पर्सनालिटी को, इस प्याज की पर्त को, उखाड़ कर फेंक देने में उतनी ही आसानी होगी जैसे शरीर से मैल को अलग कर देने में होती है। लेकिन अगर कोई आदमी अपने मैल को सोना समझ रहा हो तब कठिनाई हो जाती है। कोई आदमी अपनी बीमारी को अगर मूल्य दे रहा हो, आभूषण समझ रहा हो,

तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। अगर हम किसी बच्ची की नाक को छेदें तो उसे तकलीफ होगी, लेकिन सोने के आभूषण की आकांक्षा में कोई नाक छिदवाने के लिए तैयार हो जायेगी। अब शरीर को छेदना पागलपन है। लेकिन सोने की आशा में हम पागलपन करने को भी तैयार हो जाते हैं। अब शरीर को छेदना कुरूपता है, लेकिन सौन्दर्य के ख्याल में, भ्रम में, हम शरीर को छेदने को राजी हो जाते हैं। हम बुरे होने को राजी हो गये हैं, क्योंकि बुरे होने के पीछे हम सोने की कील लगाये हुए हैं विचारों की। विचार के अनुसार आचरण कभी मत करना और तब आपके व्यक्तित्व की सीधी और सफाई हो जायेगी। आप जो होंगे वही होंगे, धोखे का उपाय नहीं रह जायेगा। दूसरे को धोखा देने का डर नहीं है, अपने को धोखा देने का उपाय नहीं रह जायेगा। आप अपने चेहरे को पहचान सकेंगे और जिस दिन यह चेहरे चारों तरफ से पहचान में आ जाते हैं और इनकी कुरूपता, इनकी गन्दगी और इनकी दुर्गन्ध, इनका कोढ़, जब चारों तरफ से दिखाई पड़ने लगता है, बाहर और भीतर, तब आप इसके साथ रह नहीं सकते। ऐसे हो जाना जब किसी के कपड़ों में आग लगी हो और वह कपड़े को फेंक कर नग्न हो जाय। ठीक ऐसे ही ट्रांसफार्मेशन होता है। ऐसे ही क्रांति घटित होती है। जब सारा व्यक्तित्व रुग्ण और आग-लगा मालूम होता है तब आप उसे फेंक देते हैं। उसे फेंकने के लिए फिर एक क्षण भी विचार नहीं करना पड़ता कि कल फेकूँगा।

बुद्ध के पास कोई आया और उसने कहा महाराज कुछ उपदेश दें। तो बुद्ध ने कहा, करोगे अभी कि कल? उसने कहा अभी तो बहुत मुश्किल है। तो बुद्ध ने कहा फिर कल ही आना। जिस दिन करना हो उसी दिन आ जाना। उसने कहा, नहीं आप उपदेश तो दे दें। वक्त पर काम पड़ेगा, आप मिलें न मिलें। कभी उपयोग में जरूर लाऊँगा। बुद्ध ने कहा कि मैं एक गाँव से गुजरता था और घर में आग लग गई थी। मैंने उस घर के लोगों को कहा—अभी मत भागो, कल भाग जाना। वे कहने लगे पागल हो गये हो! घर में आग लगी है, कल तक कैसे रुका जा सकता है। तो बुद्ध ने कहा कि जहाँ तक मैं समझता हूँ तुम जो हो अभी मानते हो कि ठीक हो, इसलिए कल तक ठहर सकते हो। और जब तुम ठीक ही हो तो मुझे क्यों परेशान करते हो? मैं क्यों व्यर्थ की बातें तुमसे कहूँ? जिस दिन तुम्हें पता लगे कि तुम ठीक नहीं हो उस दिन आ जाना। नहीं, उस आदमी ने कहा मुझे पता तो है मैं ठीक नहीं हूँ। आदमी अच्छा नहीं हूँ बुरे काम करता हूँ, लेकिन आत्मा तो शुद्ध बुद्ध है। आत्मा तो शुद्ध है सदा। अब रहा आचरण, तो आचरण बदल लूँगा आप उपदेश करें।

हम सब उपदेश ग्रहण करने को बहुत आतुर और उत्सुक हैं। फिर हम सोचते हैं उसके अनुसार आचरण बना लेंगे। यह आचरण वैसा ही होगा जैसा मंच पर अभिनेता का होता है। पहले उसे स्क्रिप्ट मिल जाती है, पहले उसे ढाँचा मिल जाता है नाटक का। फिर उसको कंठस्थ करता है। फिर रिहर्सल करता है। फिर आकर मंच पर दिखा देता है करके कि यह रहा।

अभिनय का मतलब है विचार के अनुसार आचरण, लेकिन आत्मा का मतलब कुछ और है, आचरण के अनुसार विचार। अगर बुरा आचरण है तो बुरा विचार ही करना। टूट जाएँगे आप। आप का व्यक्तिगत बच नहीं सकेगा, बिखर जाएगा। और जिस दिन आपका पुराना व्यक्तित्व पूरा बिखर जाएगा उस दिन खाली जगह में उसका जन्म होगा जो आपका असली चेहरा है।

जापान में जेन फकीरों के पास अगर कोई जाता है तो बहुत से सवाल उनसे पूछते हैं। उनमें से एक सवाल यह भी है कि कृपा करके अपना ओरिजिनल चेहरा प्रकट कीजिए, अपना असली चेहरा दिखाइए? अब नया आदमी आया है उसे कोई फकीर कहता है असली चेहरा दिखाइए? तो वह कहता है यही मेरा चेहरा है। फकीर कहता है अगर यही तेरा चेहरा है तो यहाँ आने की कोई जरूरत नहीं। जा खोज—असली चेहरा लेके आ। कभी-कभी कुछ हिम्मतवर लोग असली चेहरा लेके आ जाते हैं। लेकिन वे फकीर भी बहुत अद्भुत हैं, वे कहते ही चले जाते हैं कि माना कि यह पिछले से ज्यादा ओथेन्टिक है, पिछले वालों से ज्यादा गहरा है लेकिन फिर भी असली नहीं है। अपना असली लेके आ। उस चेहरे को ला, जो जन्म के पहले तेरे पास था और मौत के बाद तेरे पास होगा। जन्म के पहले कौन-सा चेहरा तेरे पास था उसे ले आ। या मरने के बाद तेरे पास फिर जो चेहरा होगा उसे ले आ। कृपा करके यह बीच के चेहरे को यहाँ मत ला। और जब कोई आदमी आके बैठ जाता है फेसलेस, बिना चेहरे के, तो वह फकीर कहता है, ठीक है, अब तू असली जगह आ गया। बड़ी उपलब्धि है फेसलेसनेस। लेकिन हम बहुत डरते हैं। अगर चेहरा खो जाय तो हम बहुत डरते हैं, हम पूछते हैं इससे बड़ी मुश्किल हो गई। फिर हम जल्दी चेहरा बनाने में लगते हैं।

चेहरा खोना ही चाहिए अगर चोरी खोनी है और वह क्षण आना ही चाहिए वहाँ आपको पक्का न रह जाय कि मैं कौन हूँ, अगर आपको जानना है कि आप कौन हैं? चोर चेहरे को हटाइए, चाहे महावीर से लिये हों, चाहे बुद्ध से, चाहे कृष्ण से, चाहे मुसलमान के, चाहे जैन के, चाहे हिन्दू के। उन चेहरों को हटाइए और उसको खोजिए जो आपका है। और जिस दिन आपके सारे चेहरे गिर जायेंगे

अचानक आपके सामने वह रूप प्रगट हो जाता है जो आपका है। जैसे ही वह रूप प्रकट होता है आप अचोरी को उपलब्ध हो जाते हैं। और जिस आदमी ने व्यक्तित्व चुराने बंद कर दिए उसने चेहरे चुराने बंद कर दिए। जिसने आचरण चुराने बंद कर दिए वह आदमी वस्तुएँ नहीं चुरा सकता, वह असंभव है। उनका कोई उपाय नहीं रह जाता। जिसने इतनी गहरी चोरियाँ छोड़ दीं, वह इन क्षुद्र चोरियों के लिए नहीं जाएगा; लेकिन हम क्षुद्र चोरियाँ छोड़ने में लगे रहते हैं।

एक मित्र मेरे पास आये, उन्होंने मुझसे कहा कि मैं रिश्वत नहीं लेता हूँ। बड़े आफिसर हैं। मैंने कहा अगर पाँच रुपये कोई देने आये। उन्होंने कहा, क्या आप फिजूल की बातें करते हो। मैं लेता ही नहीं रिश्वत। मैंने कहा कोई पाँच सौ देने आये। उन्होंने उतने जोर से नहीं कहा कि क्या फिजूल की बातें करते हो। उन्होंने कहा, नहीं, नहीं, मैं लेता ही नहीं हूँ। मैंने पूछा अगर कोई पाँच हजार रुपया लेके आये तो? उन्होंने मुझे गौर से देखा, संदेह उनके मन में आ गया। मैंने कहा अगर कोई पाँच लाख लेके आये? उन्होंने कहा, फिर सोचना पड़ेगा।

तो हमारे चोर होने में हो सकता है मात्राएँ हों, डिग्रीज हों। हो सकता है आप दो पैसे न चुराते हों लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि आप अचोर हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है कि आपने दो पैसे चुराये कि दो लाख चुराये। चोरी में कोई मात्रा हो सकती है? चोरी कम और ज्यादा हो सकती है? दो पैसे की चोरी कम और दो लाख की ज्यादा। दो पैसा कम होंगे, दो लाख ज्यादा होंग, चोरी तो एक-सी है। चोरी कैसे कम और ज्यादा हो सकती है? चोरी का एक्ट तो टोटल है। दो पैसे चुराऊँ तो भी मैं उतना ही चोर होता हूँ जितना दो लाख चुराऊँ। यह हो सकता है आपके आपकी चोरी के अपने मापदंड हैं, मेरे चोरी के अपने मापदंड हैं। मैं दो पैसे चुराता हूँ आप दो लाख चुराते हैं। दो लाख चुरानेवाले दो पैसे चुराने वालों को जेल में बंद कर सकते हैं। कर सकते हैं क्योंकि दो पैसा वाले अभी जेल नहीं बना सकते, दो लाख वाले जेल बना सकते हैं। दो लाख वाले चोरों को पकड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि दो लाख वाले चोर किसी को भी दो लाख रुपया चोरी में दे सकते हैं तो जो मैजिस्ट्रेट दो पैसेवाले चोर को सजा दे दे, वह दो लाख वाले चोर को कैसे सजा दे दे? क्योंकि तब तक तो वह मजिस्ट्रेट भी चोर हो जाएगा। दो लाख के लिए तो वह भी राजी हो सकता है। तो बड़े चोर छोटे चोरों को फँसाये चले जाते हैं। बड़े चोर दीवारों के बाहर, छोटे चोर दीवारों के भीतर। होशियार चोर दीवारों के बाहर, नासमझ चोर दीवारों के भीतर। लेकिन पूरा समाज चोर है।... और यह चोरी जब तक

हम वस्तुओं के संबंध में सोचते हैं तब तक मिटनेवाली नहीं है। यह हो सकता है कि मैं सब छोड़ के भाग जाऊँ और कहूँ मैं चोरी नहीं करूँगा। लेकिन मेरा भोजन कोई चोर लाएगा, मेरे कपड़े कोई चोर लाएगा, मेरे रहने का आश्रम कोई चोर बनाएगा। इससे क्या फर्क पड़ता है। सिर्फ मैं और भी होशियार चोर हूँ। मैं खुद चोरी नहीं करता हूँ दूसरे से करवाता हूँ। और कोई फर्क नहीं पड़ जाएगा। लेकिन मैं जिम्मेदारी के बाहर नहीं भाग सकता। चोरी है, समाज चोर है, समाज चोर रहेगा। तब तक, जब तक हम चोरी की वस्तुओं को चोरी समझ रहे हैं। समाज चोर है क्योंकि हमने बहुत गहरे में सबको चोर होने की शिक्षा दी है।

हम एक बच्चे से कहते हैं विवेकानंद जैसे हो जाओ—अब इस बच्चे का क्या कसूर? विवेकानन्द जैसा हो जाय—विवेकानन्द बहुत भले थे, लेकिन इस बच्चे की कौन-सी गलती कि विवेकानंद जैसा हो जाय? और अगर हो गया तो चोर हो जाएगा। हम कहते हैं महावीर जैसे हो जाओ। अब कोई गलती की है आपने पैदा हो के? अगर महावीर को ही सिर्फ पैदा होने का हक है पृथ्वी पर तो अब-तक दुनिया खत्म हो जानी चाहिए। वह हो चुके पैदा, मामला खत्म हो गया। अब आपके होने की क्या जरूरत है? तो महावीर की कार्बन कापियाँ दुहराने की क्या जरूरत है? जब ओरिजिनल ही हो गई तो अब फिजूल की और मेहनत किस लिए कर रहे हैं? एक महावीर काफी नहीं! किसी आदमी को कार्बन कापी होने की जरूरत नहीं है। व्यक्तित्व चुराने से बचना, आचरण चुराने से बचना, तब किसी दिन आपकी अपनी आत्मा प्रकट होगी जो अचोरी को उपलब्ध होती है। और उसके बाद वस्तुओं को तो चुराने का सवाल ही नहीं उठता। वह सवाल ही नहीं है।

यह थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं। यह आप कोशिश करने में मत लग जाना अन्यथा यह मेरा उधार विचार हो जाएगा और चोरी शुरू हो जाएगी। चोरी के बहुत सूक्ष्म रास्ते हैं। हो सकता है आप कहें कि बिलकुल ठीक कह रहे हैं, चलें अब यही करें, चोरी शुरू हो गई। कृपा करके यही मत करना जो मैं कह रहा हूँ। मैं जो कह रहा हूँ उसे समझ लेना, और छोड़ देना। समझ आपके पास रह जाय, विचार नहीं। परफ्यूम रह जाय फूल नहीं। मैंने जो बात कही वह समझ लेना, फिर उसे यहीं छोड़ देना। बात से कोई लेना-देना नहीं, समझ आपके साथ चली जाएगी। वह समझ आपकी जिंदगी को बदले तो बदलने देना, न बदले तो न बदलने देना। कृपा करके ऊपर से थोपने की कोशिश मत करना, अन्यथा चोरी जारी रहेगी। और अचोरी कभी उपलब्ध नहीं हो सकती।

कल चौथे सूत्र अकाम पर बात करेंगे। मैंने कहा कि जब हिंसा रूप लेता है तो उसका एक रूप परिग्रह है और जब परिग्रह पागल होता है, विक्षिप्त होता है तो उसका एक रूप चोरी है। कल अकाम की बात करेंगे। अकाम तीनों का आधार है। कामवासना–डीजायरिंग, चाह, वह हिंसा का भी आधार है। वह परिग्रह का भी आधार है। वह चोरी का भी आधार है। काम इन तीनों के नीचे बैठा है। सबकी जड़ में वह है। कल हम काम को समझेंगे और परसों अप्रमाद को।

●

अकाम

●

चौथा महाव्रत

अहिंसा, अपरिग्रह, अचोरी तीन महाव्रतों पर हमने विचार किया। आज चौथा व्रत है, अकाम। काम मनुष्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ऊर्जा का नाम है। जिन तीन व्रतों की हमने बात की उन सबके आधार में काम की शक्ति ही काम करती है। यदि काम सफल हो जाए तो परिग्रह बन जाता है। यदि काम स्वयं की हीनता से विफल हो जाए तो चोरी बन जाता है। यदि काम दूसरे के कारण से विफल हो जाए तो हिंसा बन जाता है। काम के मार्ग पर, कामना के मार्ग पर, इच्छा के मार्ग पर, अगर कोई बाधा बनता हो तो काम हिंसक हो उठता है। अगर कोई बाधा न हो, भीतर की ही क्षमता बाधा बनती हो तो काम चोर हो जाता है और अगर कोई बाधा न हो भीतर की कोई अक्षमता न हो और काम सफल हो जाए तो परिग्रह बन जाता है। इस काम को गहरे से समझना जरूरी है।

मनुष्य एक ऊर्जा है, एक एनर्जी है। इस जगत् में ऊर्जा एनर्जी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। समस्त जीवन एक ऊर्जा है। वे दिन लद गये जब कुछ लोग कहते थे पदार्थ है। वे दिन समाप्त हो गये। नीत्से ने इस सदी के प्रारम्भ में कहा था कि 'ईश्वर मर गया है।' लेकिन यह सदी अभी पूरी हो न पाई, ईश्वर तो नहीं मरा। पदार्थ मर गया है। मेटर इज डेड। 'मर गया है' कहना ठीक नहीं है। पदार्थ कभी था ही नहीं। वह हमारा भ्रम था, दिखाई पड़ता था। वैज्ञानिक कहते हैं पदार्थ सिर्फ सघन हो गई ऊर्जा है, कन्डेन्स्ड एनर्जी है। पदार्थ जैसी कोई चीज ही जगत् में नहीं है। वह जो पत्थर है इतना-सा कठोर, इतना स्पष्ट वह भी नहीं है। वह भी विद्युत् की धाराओं का सघन हो गया रूप है।

आज सारा काम, विज्ञान की दृष्टि में ऊर्जा का समूह है, एनर्जी है। धर्म की दृष्टि में सदा से ही यही था। धर्म उस शक्ति को परमात्मा का नाम देता था। विज्ञान उस शक्ति को अभी एनर्जी, शक्ति मात्र ही कह रहा है। थोड़ा विज्ञान और आगे बढ़ेगा तो उससे एक और भूल टूट जाएगी। आज से पचास साल पहले विज्ञान कहता था पदार्थ ही सत्य है, आज विज्ञान कहता है शक्ति ही सत्य

है। कल विज्ञान को कहना पड़ेगा कि चेतना ही सत्य है। जैसे विज्ञान को पता चला कि ऊर्जा का सघन रूप पदार्थ है वैसे ही विज्ञान को आज नहीं कल पता चलेगा कि चेतना का सघन रूप एनर्जी है।

यह जो ऊर्जा है जीवन की, प्रत्येक व्यक्ति भी इसी ऊर्जा का स्फुलिंग है, इसी ऊर्जा का एक छोटा-सा रूप है। आप भी, मैं भी, सब। यह ऊर्जा, यह शक्ति अगर बाहर की तरफ बहे तो काम बन जाती है, वासना बन जाती है और अगर भीतर की तरफ बहे तो अकाम बन जाती है। आत्मा बन जाती है। जो भेद है वह सिर्फ दिशा का है। काम जब लौट पड़ता है वापस, अपनी तरफ, वापस घर की तरफ जब कामना लौट पड़ती है, तो अकाम बनता है, आत्मा बनती है। और जब वह काम ऊर्जा बाहर की तरफ बहती रहती है जीवन से, तो धीरे-धीरे आदमी क्षीण, निर्बल, निस्तेज होता चला जाता है। और वह उसकी कामना से दुनिया में बहुत-सी चीजें पा लेता है, एक अपने को भर पाने से वंचित रह जाता है। जिसे हमें पाना है, शक्ति उसी की तरफ जानी चाहिए। अगर हमें बाहर की वस्तुएँ पानी है तो शक्ति को बाहर जाना पड़ेगा और अगर हमें भीतर की आत्मा पानी हो, तो शक्ति को भीतर जाना पड़ेगा।

ध्यान रहे, काम से मेरा मतलब है बाहर बहती हुई ऊर्जा। अकाम से मतलब है, भीतर बहती हुई ऊर्जा। शक्ति के दो ढंग हैं––बाहर की तरफ बहे या भीतर की तरफ बहे। जब बाहर की तरफ बहती है तो व्यक्ति और सब पा सकता है, सिर्फ स्वयं को खो देता है। और सब पा लेने का भी कोई सार नहीं, अगर स्वयं खो जाय। सारा जगत् भी हम पा लें तो कोई सार नहीं, अगर उस पाने में मैं ही खो जाऊँ। अगर ऊर्जा भीतर की तरफ बहती है तो अकाम बन जाती है।

काम का अर्थ ही है कामना, डिजायर, इच्छा। जब भी हम कोई कामना करते हैं तो हमें बाहर की तरफ बहना पड़ता है, क्योंकि इच्छा कहीं बाहर तृप्ति की आशा बन जाती है। कुछ पाने को है बाहर, तो हमें बाहर की तरफ बहना पड़ता है। हम सब बाहर बहते हुए लोग हैं। हम सब कामनाएँ हैं; विचार, डिजायर। चौबीस घंटे हम बाहर की तरफ बह रहे हैं, किसी को धन पाना है, किसी को यश पाना है, किसी को प्रेम पाना है और बड़ा आश्चर्य यह है कि अगर किसी को परमात्मा भी पाना है तो भी वह बाहर की तरफ बहता चला जाता है। किसी को मोक्ष पाना है तो वह भी सोचता है कहीं ऊपर मोक्ष है वह पाना है। धर्म का बाहर से कोई भी संबंध नहीं है। इसलिए जिनके ईश्वर बाहर हों वह ठीक से समझ लें कि उनका धर्म से कोई नाता नहीं है। जिनका मोक्ष बाहर हो वह ठीक से समझ लें, वह धार्मिक नहीं हैं। जिनके पाने की कोई भी चीज बाहर हो

वह समझ लें कि वह कामी हैं। सिर्फ एक ही स्थिति में काम से मुक्ति होती है और वह यह कि हम भीतर बहना शुरू हो जायें। बाहर कोई भी ऑबजेक्ट, बाहर कोई भी पाने की चीज, हमारी ऊर्जा को बाहर की तरफ ले जाती है। और हम धीरे-धीरे खाली होते हैं, समाप्त हो जाते हैं। फिर दूसरा जन्म, फिर एक ऊर्जा लेके पैदा होते हैं, फिर बाहर की तरफ बहते हैं, फिर समाप्त हो जाते हैं। फिर तीसरा जन्म, फिर ऊर्जा लेके पैदा होते हैं, फिर बाहर की तरफ बहते हैं और समाप्त हो जाते हैं।

जन्म के साथ हम शक्ति लेकर आते हैं। मृत्यु के साथ हम शक्ति खो के वापिस लौट जाते हैं। जो व्यक्ति मृत्यु के साथ भी शक्ति लेके वापिस लौटता है उसे फिर आने की जरूरत नहीं रह जाती है। जन्म के साथ सभी शक्ति लेकर आते हैं। मृत्यु के साथ अधिकतम शक्ति खोकर, निस्तेज, खाली कारतूस, चले हुए कारतूस जिसकी खोल रह गयी है गोली तो जा चुकी है, उस खोल को लेके वापिस लौट जाते हैं। जो व्यक्ति मरते क्षण भी अपनी पूरी ऊर्जा को बचा के ले जाता है उसे लौटने की जरूरत नहीं पड़ती। जो कबीर की भाँति मरते क्षण में कह सकता है कि "ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया"। कुछ खर्च नहीं किया, कुछ खोया नहीं, दौड़े नहीं। चादर सँभालो, जैसी दी थी वैसी ही वापिस लौटा देते हैं। जो मृत्यु के क्षण में भी ज्यों का त्यों आया था उसे वापिस जन्म लेने की जरूरत नहीं रह जाती। अकाम, जन्म-मृत्यु से मुक्ति है। काम, बार-बार जन्म में लौट आने का कारण है।

कोई कामना कभी ठीक अर्थों में पूरी नहीं होती, हो नहीं सकती; और जो बाहर की तरफ दौड़ने का आदी हो गया है जब भी कोई कामना पूरी होने के करीब होती है तब तक वह कामना बना लेता है, अन्यथा फिर बाहर की तरफ दौड़ेगा कैसे? बाहर की तरफ दौड़ना ही जिसकी जिंदगी बन गयी है, वह, एक एक इच्छा पूरी हुई नहीं कि दूसरी को जन्मा लेता है। बल्कि एक के पूरे होने के साथ अनेक को जन्मा लेता है, फिर दौड़ना शुरू कर देता है। हम बाहर की तरफ दौड़ती हुई ऊर्जाएँ हैं। आऊट गोइंग एनर्जीस। इसलिए हम खाली कारतूसों की तरह मर जाते हैं। इसलिए हमारी मृत्यु एक सौंदर्य नहीं हो पाती और हमारी मृत्यु एक अनुभव नहीं बन पाती। हमारी मृत्यु एक दुःख, एक निस्तेज पीड़ा, एक नपुंसकता बन जाती है। हम सब भाँति टूट कर समाप्त हो जाते हैं। इसलिए मृत्यु में इतनी पीड़ा है। वह पीड़ा मृत्यु की नहीं है। वह पीड़ा निस्तेज खाली हो गये आदमी की है जो सब भाँति रिक्त हो गया, जिसमें अब कुछ भी नहीं बचा, सिर्फ खाली खोल रह गया। इसलिए मौत दुःख देती है। लेकिन मौत भी

आनंद देती है उसे, जो खाली नहीं, भरा हुआ है। हम भरे हुए कैसे रह पायें इसी सूत्र को समझ पाने के लिए अकाम है, लेकिन अकाम को समझने के लिए पहले काम की समस्त यात्रा समझ लेनी चाहिए। काम किस तरह गति करता है हमारा ! हम बाहर की तरफ कैसे बहते हैं इसे समझ लेना जरूरी है। इसे समझ लें तो भीतर की तरफ बहना बड़ी सरल बात है, बड़ी आसान।

हजारों लाखों साल से हमें पता है कि पदार्थ अणुओं से बना है, एटम से बना है, लेकिन हम अणु को तोड़ नहीं पाये थे। इस सदी में आकर हमने अणु को तोड़ लिया। अणु को तोड़ते ही बड़ी चमत्कारिक घटना घटी। और वह यह, कि एक छोटे से अणु ने हाइड्रोजन के, झीने से अणु में, या किसी भी चीज के छोटे से अणु में, टूटते ही भयंकर शक्ति का जन्म हुआ। एक छोटे से अणु के विस्फोट से हिरोशिमा में एक लाख लोग तत्काल मृत्यु को उपलब्ध हो गये। एक छोटे से अणु में इतनी ऊर्जा छिपी थी भीतर, कि फट पड़ा तो इतना विस्फोट हुआ। विज्ञान ने अणु को तोड़ कर एक बहुत कीमती बात बता दी, वह यह कि प्रत्येक चीज के भीतर अनंत ऊर्जा छिपी है। अगर टूट जाए तो विस्फोट हो जाता है और सब बाहर वह जाता है। अगर बंद हो जाए लेकिन हमें तो कभी पता नहीं था कि बंद अणु में इतनी ऊर्जा छिपी है। विज्ञान ने जो काम किया है धर्म ने उससे ठीक उल्टा काम बहुत पहले कर लिया है। विज्ञान ने तोड़ा है अणु, धर्म ने जोड़ा था। इसीलिए धर्म का नाम है योग, योग का अर्थ है जोड़।

मनुष्य की चेतना भी अणु है और उस अणु को हम अगर टूटा हुआ रहने दें तो उसमें सब वह जाता है, अनंत ऊर्जा वह जाती है। अगर वह अणु जुड़ जाये, एनेलैसिस नहीं, विश्लेषण नहीं, टूटे नहीं सिन्थेथिस हो जाये, संश्लिष्ट हो जाये, इन्टीग्रेटेड हो जाये, बन्द हो जाये, बिन्दु बन जाये, अपना बिन्दु हो जाये, सब तरफ से बाहर खोना बन्द हो जाये तो अनंत ऊर्जा भीतर उपलब्ध हो जाती है। इस अनंत ऊर्जा की अनुभूति अनंत परमात्मा की अनुभूति है। इस ऊर्जा का अनुभव अनंत आनंद का अनुभव है। इस अनंत ऊर्जा का अनुभव अनंत वीर्य का अनुभव है। इस अनंत ऊर्जा के अनुभव के बाद फिर कुछ अनुभव करने को शेष नहीं रह जाता, सब अनुभव हो जाता है। लेकिन ऐसा समझना चाहिए कि आदमी टूटा हुआ अणु है। चेतना का टूटा हुआ अणु है। उसमें छेद है; जैसे कोई छेद वाली बाल्टी से पानी भरता हो। पानी भरा हुआ दिखाई पड़ता है जब बाल्टी पानी में डूबी हो, और जसे ही बाल्टी पानी के बाहर निकली कि खाली होनी शुरू हो जाती है। छेद हैं चारों तरफ, ऊपर तक आते-आते पानी के गिरने का शोरगुल भर होता है, पानी आता नहीं, खाली बाल्टी वापस लौट आती है।

जन्म के क्षण में हम सब ऊर्जा से भरे हुए होते हैं। जब तक जन्म नहीं हुआ, तब तक हम भरी बाल्टी होते हैं। जन्म के साथ बाल्टी ऊपर उठी कुएं से, कि गिरना शुरू हुआ। अगर ठीक से समझें तो जन्म के साथ ही हमारा मरना शुरू हो जाता है; हममें से कुछ रिक्त होना, खाली होना शुरू हो जाता है। हम फूटी बाल्टी की तरह खाली होने लगते हैं। जन्म का पहला क्षण मरने की शुरुआत है। खाली होना शुरू हो गया। इसीलिए जन्म के पहले क्षण के बाद ही प्रत्येक व्यक्ति मरने के योग्य हो जाता है—कभी भी मर सकता है। अब यह बात दूसरी है कि योग्यता वह कब पूरी करेगा फिर जीवन भर हम खाली, खाली, खाली होते चले जाते हैं। थोड़ा-बहुत जो जिन्दगी में हमें भरेपन का अनुभव होता है वह शायद सुबह हम जब रात के बाद उठते हैं तो थोड़ी देर को लगता है कुछ भरे हैं। रात भर में ऊर्जा थोड़ी-सी संकलित हो जाती है, क्योंकि इंद्रियों के द्वार बन्द हो जाते हैं। आँखें बन्द हो जाती हैं। हाथ शिथिल पड़ जाते हैं, कान सुनते नहीं; होंठ बोलते नहीं, नाक सूंघती नहीं, सब बन्द हो जाते हैं। द्वार बन्द हो जाता है। इसलिए सुबह एक ताजगी मालूम पड़ती है वह ताजगी, वह ताजगी रात को थोड़ी-सी ऊर्जा ठहर जाने के कारण पता चल रही है। अगर कोई व्यक्ति अपने पूरे जीवन की ऊर्जा को ठहरा ले तो वह जिस ताजगी का अनुभव करता है उसका हमें कोई भी पता नहीं। उसका हमें कोई पता नहीं हो सकता; अगर हम अपनी जीवन भर की सब सुबह की ताजगी को इकट्ठा जोड़ लें तो भी उससे कुछ पता नहीं चल सकता। अगर एक व्यक्ति की नींद खो जाय तो फिर जीना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि वह रात जो थोड़ी ऊर्जा इकट्ठी करता है वह भी बन्द हो गयी। पन्द्रह दिन नींद खो जाये तो आदमी पागल हो जाए। पन्द्रह दिन भोजन न मिले तो चल सकता है। पन्द्रह दिन नींद न मिले तो कठिनाई होगी।

अगर कोई बीमार है और सो न सके तो चिकित्सक पहले फिक्र करता है कि बीमारी को पीछे देख लेंगे, पहले नींद आ जाए, क्योंकि जिस ऊर्जा से बीमारी को ठीक होना है, वह संकलित होनी चाहिए, संग्रहीत होनी चाहिए, इकट्ठी होनी चाहिए हम सिर्फ ऊर्जा खो रहे हैं। और काम, ऊर्जा को खोने की विधि है। काम के बहुत रूप हैं, उसमें सर्वाधिक सघन रूप यौन है। इसलिए धीरे-धीरे काम और यौन, काम और सेक्स पर्यायवाची बन गये। भोजन से ऊर्जा मिलती है, नींद से ऊर्जा बचती है व्यायाम से ऊर्जा जगती है फिर इस ऊर्जा को हम खर्च करते हैं। इस ऊर्जा का बहुत-सा खर्च तो सिर्फ जीवन-व्यवस्था में व्यय हो जाता है। इस ऊर्जा का बहुत-सा खर्च तो ऊर्जा को कल भी हम पैदा कर सकें, इसमें खर्च हो जाता है। ऊर्जा भीतर जा सके, नई पैदा हो सके। जब आप भोजन लेते हैं भीतर

तो बहुत बड़ा चमत्कार घटित होता है। आप साधारण मृत पदार्थ को भीतर ले जाते हैं और आपकी जीवन-ऊर्जा उसे जीवंत बनाती है। नान-आरगेनिक को आरगेनिक बनाती है। उसमें बहुत ऊर्जा व्यय होती है। भोजन ऊर्जा देता है लेकिन भोजन को करने और भोजन को खून बनाने में ऊर्जा व्यय होती है—चलते हैं तो ऊर्जा व्यय होती है, बैठते हैं तो ऊर्जा व्यय होती है, सोते हैं तो सोने में ऊर्जा व्यय होती है। पर संग्रहीत भी होती है।

इस सारी प्रक्रिया को, जीवन की सारी प्रक्रिया के बाद जो थोड़ी-बहुत ऊर्जा आपके पास बचती है उसका आपने सिवाय काम का यौन में परिवर्तन करने के और कोई उपयोग नहीं किया है। उस ऊर्जा का आप सिर्फ सेक्स में उपयोग करते हैं। इसलिए यह समझ लेने जैसा है कि सब कुछ करके जो बचता है हमारे पास, उसका हम क्या उपयोग कर रहे हैं। उसका उपयोग अगर सिर्फ सेक्स में हो रहा है तो ध्यान रहे, यह सेक्स सिर्फ रिलीफ है। यह यौन सिर्फ ऊर्जा के भार से मुक्ति है।

अब बड़े मजे की बात है। ऊर्जा इकट्ठी करने में चौबीस घंटे खर्च करते हैं, उसे बचाने के लिए आठ घंटे सोते हैं। खाना कमाने के लिए जिन्दगी भर मेहनत करते हैं और फिर जब ऊर्जा आपके पास आती है तो आप उस ऊर्जा के भार से भारी हो जाते हैं। उसे फेंकने के लिए कोशिश करते हैं। यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति दिन भर धन कमाये और साँझ जाकर नदी में फेंक आये, क्योंकि दिन भर धन कमाने के लिए पागल रहे, साँझ पाया कि धन ने थैली को बोझिल कर दिया है। और अब बोझ बुरा मालूम पड़ता है तो बोझ से खाली हो लें और नदी में फेंक आये। हम ऊर्जा इकट्ठी करते हैं पहले, ऊर्जा न हो तो श्रम करते हैं, और जब ऊर्जा पास में आ जाये तो ऊर्जा बोझिल हो जाती है। चित्त पर भार हो जाता है, फिर उसे फेंकना पड़ता है। सेक्स, ऊर्जा को फेंकने के लिए हम उपयोग में लाते हैं। वह सिर्फ रिलीफ है। उससे हम फिर खाली हो जाते हैं। अब बड़ी एब्सर्ड जिन्दगी है। आदमी कल सुबह उठ कर फिर ऊर्जा इकट्ठी करने में लगेगा, कल साँझ तक वह फिर ऊर्जा इकट्ठी करेगा और जब उसके पास ऊर्जा इकट्ठी हो जायेगी तो उसे फेंक कर फिर रिलीफ पायेगा। अजीब पागलपन है! इकट्ठा करना, फेंकना, इकट्ठा करना, फेंकना। अर्थ क्या होगा इस जिंदगी का? प्रयोजन क्या होगा इस जिन्दगी का? पायेंगे क्या इस जिन्दगी में? लेकिन यह हमें दिखाई नहीं पड़ता। अगर खाना न मिले तो हम परेशान हैं, खाना मिल जाए तो हम परेशान हैं। अगर शक्ति पास में न हो तो हम दुर्बल हैं, शक्ति पास में हो जाए तो दुर्बल होने को हम फिर आतुर हैं। आदमी एक एबसर्डडिटी है। जैसा आदमी है वह बिलकुल

ही तर्कहीनता है। जैसा आदमी है, उससे तो जैसे बुद्धि का कोई संबंध नहीं है। जैसे कि कोई झरना सिर्फ इसलिए सरोवर बन रहा है कि जब बन जाये तो दीवाल टूटे और बह जाये। और दीवाल जब टूट जाय तो फिर दीवाल बनायी जाय, फिर झरना बनाया जाय और फिर तोड़ा जाय, जिन्दगी भर हम इकट्ठा करते और खोते हैं।

यह जिन्दगी नहीं हो सकती, कहीं भूल हो रही है। ऊर्जा का इकट्ठा करना तो ठीक है, लेकिन खोने के लिए ही इकट्ठा करना बहुत बेमानी है, बहुत मीनिंग-लेस है। अगर कोई आदमी कहे कि मैं इसलिए जन्म लेता हूँ कि मर जाऊँ। हम कहेंगे कि पागल हो। अगर कोई आदमी कहे कि मैं इसलिए इकट्ठा कर रहा हूँ कि खो दूँ, तो हम कहेंगे कि तुम पागल हो। कोई आदमी कहे कि मैं इसलिए मकान बनाता हूँ कि गिरा दूँ, हम कहेंगे तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं। लेकिन हम सब जिंदगी में करते क्या हैं? यही तो करते हैं। एक दो छोटे उदाहरण से समझें।

एक आदमी तो पैसे कमा कर साँझ नदी में फेंक देता है। और दूसरा आदमी कहता है—पैसे साँझ नदी में फेंकने से बचाने के लिए मैं कमाता ही नहीं। लेकिन दोनों एक से दरिद्र होते हैं—कमाने वाला और न कमाने वाला। फेंकने वाले के पास भी शाम को दो पैसे नहीं होते। जिसने कमाया नहीं उसके पास भी दो पैसे नहीं होते। दोनों दीन होते हैं।

इधर आप ऊर्जा कमाते हैं और काम में व्यय करते हैं, यौन में व्यय करते हैं। उधर संन्यासी डर के ऊर्जा कमाने को बंद कर देता है, उपवास करता है, खाना कम खाता है। अपने शरीर में इतनी ही शक्ति पैदा करता है जितना रोजमर्रा के काम में आ जाय, अतिरिक्त न बचे। नहीं तो वह मुश्किल में पड़ जायेगा। क्योंकि फिर आपका ही काम उसे करना पड़ेगा। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, आप कमाके खो देते हैं वह कमाता ही नहीं ताकि खोना पड़े। लेकिन उससे कोई ऊर्जा बचती नहीं।

अभी अमेरिका की एक विज्ञान शाला में एक प्रयोग चल रहा था, वह हिन्दुस्तान भर के संन्यासियों को ठीक से समझ लेना चाहिए। तीस विद्यार्थियों को एक महीने तक भूखा रखा गया और यह समझने की कोशिश की गयी, कि भूख और सेक्स का क्या सम्बन्ध है? फिर भूख से यौन का क्या सम्बन्ध है? बड़े अद्भुत परिणाम हुए। पहले सात दिनों में जब उन्हें भूखा रखा गया तो उनकी यौन-प्रवृति तीव्र हो गयी, उनकी सेक्सुआलिटी बढ़ गयी। लेकिन सात दिन के बाद फिर उनकी यौन प्रवृत्ति कम होती चली गयी। पन्द्रह दिन के बाद उनके सामने नग्न चित्र भी रखे गये स्त्रियों के, तो वे उत्सुक न रहे। किसी भी तरह उन्हें भड़काया

जाय, वे रस न लें। तीस दिन पूरे होते-होते उन तीसों युवकों में किसी तरह की काम-वासना न रह गयी, किसी तरह का यौन न रहा। वे बिलकुल ठंढे हो गये, बिलकुल जम गये।

फिर उनको भोजन दिया गया। सात दिन में फिर वापस लौटना शुरू हो गया। पन्द्रह दिन के बाद वे अपनी जगह वापस लौट गये जहाँ थे। तीस दिन के बाद वे सामान्य व्यक्ति थे। वही रस, वही यौन, वही वासना फिर उनको पकड़ गई–यह हुआ क्या ? यौन नष्ट नहीं हुआ, सिर्फ यौन की अतिरिक्त ऊर्जा चाहिए वह नहीं मिली। साँप तो जिन्दा रहा, लेकिन चलने की ताकत न रही। साँप पड़ गया बेहोश। पड़ा रहा, प्रतीक्षा करता रहा कि जब शक्ति मिले तो चलूँ। फिर शक्ति मिली, फिर साँप हिलने-डोलने लगा, फिर साँप खड़ा हो गया। इन तीस दिनों के प्रयोग ने बताया, कि संन्यासी अपने को लंबे अरसे से धोखा दे रहे हैं। हाँ अगर इन बच्चों को निरंतर कम भोजन पर रखा जा सके, इतना ही भोजन दिया जाय, जितना उसके चलने, उठने, बैठने बात करने में खत्म हो जाय। तो अब यह बिना सेक्स से जिन्दा रह सकेंगे। लेकिन यह अकाम नहीं है, यह सिर्फ मुर्दा काम है, यह मरा हुआ सेक्स है।

इसलिए जिन लोगों को यह समझ में आ गया कि शक्ति इकट्ठी होती है, फिर उससे मुक्त होने के लिए रिलीफ होने के लिए यौन में जाना पड़ता है, उन लोगों ने शक्ति इकट्ठी करनी बंद कर दी। वे भी उसी भ्रांति में हैं, जिस भ्रांति में बाकी लोग हैं।

गृहस्थ और संन्यासी भ्रांतियों के उल्टे छोर हैं। अकाम का यह अर्थ नहीं है। अकाम का अर्थ है शक्ति तो पैदा हो, लेकिन यौन से विसर्जित न हो, संग्रहीत हो और जब शक्ति बहुत बड़े पैमाने पर संग्रहित होती है और यौन से विसर्जित नहीं होती, तो वह शक्ति आपके भीतर ऊर्ध्वगमन शुरू करती है। जैसे कि हम एक नदी की बाढ़ को रोक दें, बाँध बना दें तो नदी की जो गहराई थी––समझ लें दस फीट थी, बाँध बनाने के बाद बाँध की गहराई सौ फीट हो जायेगी और नदी जितनी रुकने लगेगी, उतनी ही दीवार बड़ी करनी पड़ेगी और बाँध गहरा हो जायेगा और बाँध हजार फीट भी गहरा हो सकता है। ऊपर उठने लगेगा। जब भी कोई शक्ति रोकी जाती है, तो ऊपर उठती है, क्योंकि संग्रहीत होती है। जब आपके भीतर शक्ति अतिरिक्त इकट्ठी होने लगती है तो आपके भीतर शक्ति का अंबार लगता है और ऊपर की तरफ उठनी शुरू हो जाती है। अभी आपकी सेक्सलेवल के ऊपर शक्ति कभी नहीं उठती, बस आपकी जिंदगी का जो सेक्स का तल है शक्ति वहाँ तक जब भी उठी, फिर आपने उसका

व्यय किया, फिर आप अपनी जगह वापस लौट आये। अगर यह शक्ति इकट्ठी हो, तो सेक्स लेवल से ऊपर उठती है और ध्यान रहे सेक्स मनुष्य का निम्नतम सेंटर है। नीचे से नीचे का द्वार है। उसके ऊपर और बड़े द्वार हैं। अगर यह शक्ति ऊपर उठे तो दूसरे द्वार खोलने शुरू करती है।

समझ लें, कि मनुष्य के भीतर सेक्स जैसे छह द्वार और हैं और ऊर्जा एक-एक द्वार पर आती है तो आनंद की गति बढ़ती है और आप हैरान होते हैं। जब सेक्स से ऊपर उठके दूसरे चक्र पर शक्ति आती है तो आप हैरान होते हैं कि मैं कैसा पागल था, मैं शक्ति को कहाँ खो रहा था ? यहाँ खोऊँ तो बहुत आनंद आता है। उससे बहुत ज्यादा आता है जो पहले केन्द्र पर आ रहा था।

जैसे कोई आदमी खदान खोद रहा हो, उसे कंकड़-पत्थर मिल जाते हैं। वह उन्हीं रंगीन कंकड़-पत्थरों को लेकर घर आ जाता है। फिर उसे कोई कहता है पागल, यह तो रंगीन कंकड़-पत्थर हैं थोड़ा और खोद। वह थोड़ा और खोदता है और उसे ताँबा मिल जाता है, वह घर लौट आता है। बाजार में उसे कुछ पैसे उस ताँबे के मिल जाते हैं। लेकिन कोई उसे कहता है पागल तू जरा थोड़ा और खोद और वह खोदता चला जाता है और चाँदी मिलती है, सोना मिलता है और हीरे जवाहरात मिलते हैं और वह खोदता चला जाता है।

हम व्यक्तित्व की पहली पर्त पर जी रहे हैं—सेक्स की पर्त पर जहाँ कि कंकड़-पत्थर से ज्यादा कुछ नहीं मिल सकता। अगर वहाँ से ऊर्जा इकट्ठी हो और थोड़ी आगे बढ़े, तो दूसरा चक्र खुलना शुरू होता है, जहाँ से कि सुख के तल बदल जाते हैं और ध्यान रहे, सेक्स के तल पर दूसरे का होना जरूरी नहीं। हम अकेले काफी हो जाते हैं और व्यक्ति मुक्त होने लगता है। सातवें चक्र पर जब ऊर्जा पहुँचती है–आपके मस्तिष्क तक जब ऊर्जा पहुँच जाती है, जब आपकी शक्ति इतनी भर जाती है, कि सेक्स सेन्टर और सहस्रार के बीच दोनों में शक्ति प्रवाहित होने लगती है, तो कोई उसे कुंडलिनी कहे, कोई उसे कोई और नाम दे तो कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस दिन आपकी ऊर्जा इतनी इकट्ठी हो जाय, कि आपके मस्तिष्क के चक्रों को भी चलाने लगती है, उस दिन आप पहली बार आत्मज्ञान को उपलब्ध होते हैं, ब्रह्म को उपलब्ध होते हैं, उस दिन आप जानते हैं, कि कहाँ पहुँच गया आज।

लेकिन हम पहले ही चक्र पर खो जाते हैं। जिंदगी का वह हमारा छिद्र सब कुछ विदा करवा देता है। लेकिन इसका क्या मतलब है ? क्या मैं यह कह रहा हूँ कि आप सेक्स को दबायें, रोकें ? अगर आपने दबाया और रोका तो आप कभी भी रोक न पायेंगे, क्योंकि शक्ति का एक नियम है कि दबाई हुई शक्ति

विद्रोही हो जाती है और जिस शक्ति को जितने जोर से दबाया जाता है, वह उतनी ही जोर से रीएक्ट करती है। किसी शक्ति को भी दबाया नहीं जा सकता। शक्ति को सिर्फ मार्ग दिया जा सकता है। ये दो ढंग हैं। शक्ति को नया मार्ग दें तो शक्ति उससे प्रवाहित होने लगती है या शक्ति का पुराना मार्ग रोकें तो शक्ति उसी मार्ग पर जोर से चोट करने लगती है। तो जो लोग भी सेक्स से लड़ेंगे वे जिन्दगी भर के लिए कामुक हो जायेंगे। वे कभी भी काम से बाहर नहीं हो सकेंगे। सेक्स से लड़कर कभी कोई व्यक्ति ऊपर के चक्रों तक नहीं पहुँचा है, जीवन की ऊँचाइयाँ नहीं छुई हैं। हाँ, जीवन के ऊपर के चक्रों को गतिमान करके कोई व्यक्ति जरूर सेक्स से मुक्त हो गया।

ब्रह्मचर्य सेक्स से लड़ाई नहीं है। ब्रह्मचर्य सेक्स से उच्च केन्द्रों का सक्रिय हो जाना—इसलिए नेगेटिव मत पकड़ लेना जैसा कि हजारों साल से इस मुल्क में हम पकड़े हुए हैं। हजारों साल से यह हमारी समझ में आ गया था बहुत पहले, कि यह ऊर्जा अगर रुक जाय तो बड़े आनन्द के द्वार खोल देती है, लेकिन यह ऊर्जा रुके कैसे ? तो हम रोक लें उसे जबर्दस्ती से। जितना आप रोकेंगे उतना यह ऊर्जा धक्का देगी और जिस जगह आप रोकेंगे, वहाँ ध्यान तो रखना ही पड़ेगा। और जिस चक्र पर ध्यान होगा वह चक्र सक्रिय रहता है। इसलिए जो लोग ऊर्जा को रोकते हैं काम के बिन्दु पर, यौन के बिन्दु पर, वे यौन के प्रति अति सक्रिय हो जाते हैं। सच तो यह है कि उनका पूरा व्यक्तित्व जननेन्द्रिय बन जाता है। उनका सारा बोध वहीं अटक जाता है। उनकी चेतना वहीं उलझ जाती है और वह उलझी हुई चेतना जितनी चोट करती है, उतना ही वह केन्द्र सक्रिय होता है और वह केन्द्र जब सक्रिय जोर से होता है तो उनके पास एक ही उपाय रहता है, कि भोजन कम कर दें, व्यायाम कम कर दें और मुर्दे की तरह जीने लगें, ताकि ऊर्जा पैदा न हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, इससे तो साधारण गृहस्थ अच्छा है। कम से कम ऊर्जा पैदा तो करता है। ऊर्जा पैदा हो तो किसी दिन ऊपर की यात्रा भी हो सकती है। संन्यासी इससे बुरी हालत में है। वह ऊर्जा पैदा ही नहीं करता हालाँकि उसकी ऊर्जा बाहर नहीं जाती, लेकिन उसके पास ऊर्जा होती भी नहीं कि ऊपर जा सके। ऊर्जा चाहिए ही। जो बाहर जाती है, वह भीतर भी जा सकती है। लेकिन जो बाहर जाने योग्य भी नहीं रही, वह भीतर जाने योग्य कभी नहीं रह जाती। जो बाहर की ही यात्रा करने में असमर्थ हो गया, वह भीतर की यात्रा कभी न कर सकेगा।

इसलिए एक बात तो पहले यह ध्यान में रख लेना कि हमारे पास अतिरिक्त ऊर्जा चाहिए ही। तो ऊर्जा को पैदा करने का पूरा इन्तजाम होना चाहिए, ऊर्जा

को नयी दिशाएँ देने का भी इन्तजाम होना चाहिए। दो-तीन सूत्र मैं आप से कहूँ कि इस ऊर्जा को नयी दिशा कैसे मिलती है !

एक, सिर्फ हम वर्तमान में जी सकें, तो ऊर्जा इकट्ठी होती है और ऊपर की तरफ चलना शुरू हो जाती है। एक पहला सूत्र "लीविंग इन दी प्रेजेन्ट"। जो आदमी भी बहुत कल की सोचता है और परसों की सोचता है और आगे का सोचता है और भविष्य में जीने की कोशिश करता है उसकी ऊर्जा बह जाती है। क्योंकि भविष्य दूर है; और भविष्य में हमारा जो संबंध है वह कामना का ही हो सकता है और कोई संबंध नहीं हो सकता। भविष्य है नहीं, भविष्य होगा। और होगा से हमारा संबंध सिर्फ वासना का हो सकता है, इच्छा का हो सकता है और कोई संबंध नहीं हो सकता।

जीसस एक गाँव के पास से गुजर रहे हैं। वह अपने शिष्यों को कहते हैं देखते हो यह लीली के खिले हुए फूल। उन शिष्यों ने कहा देखते हैं। जीसस ने कहा देखो इनका सौन्दर्य, देखो इनका खिलना, देखो इनका आनन्द और जीसस ने कहा कि सोलोमन सम्राट्—सोलोमन जो अपने वैभव के पूर्ण शिखर पर था और जिसके पास सारी पृथ्वी की संपत्ति थी वह अपने वैभव के पूर्ण शिखर पर भी इतना सुन्दर नहीं था, जितना कि यह लीली के जंगली फूल सुन्दर हैं। किसी ने पूछा, लेकिन ऐसा क्यों ? तो जीसस ने कहा सोलोमन हमेशा भविष्य में जी रहा था, यह फूल अभी जी रहे हैं, इनकी ऊर्जा कामना बनाने का मौका नहीं है, इनकी ऊर्जा जीवन बन रही है।

ध्यान रहे, जब भी हम ऊर्जा को कामना बनाते हैं तो भविष्य के कारण बनाते हैं। कामना अर्थात् "फ्युचर ओरिएन्टेशन'। वासना का मतलब है भविष्य में जीने की इच्छा। और जीवन है सदा—अभी और यहीं। जिस व्यक्ति ने भविष्य में जीने की अपनी इच्छा को प्रबल किया, वह बाहर की तरफ बहता रहेगा और उसकी ऊर्जा खोती रहेगी। भविष्य हमारी ऊर्जा को बुरी तरह पी जाता है, शोष लेता है। वर्तमान में ऊर्जा संग्रहीत होती है, इसलिए जिस व्यक्ति को अपनी ऊर्जा को, अपनी शक्ति को अकाम तक पहुँचाना हो, ब्रह्मचर्य तक पहुँचाना हो, जिसे अपनी ऊर्जा को सत्य और ब्रह्म तक ले जाना हो, जिसे अपनी ऊर्जा को स्वयं तक पहुँचाना हो, उसे भविष्य की इच्छाएँ, भविष्य की कामनाएँ, भविष्य को धीरे-धीरे क्षीण कर देना चाहिए। उसे जीना चाहिए अभी और यहीं—"हीयर एण्ड नाउ'। जब आप खाना खा रहे हैं तो सिर्फ खाना खायें। दफ्तर में मत प्रवेश कर जायें खाना खाते वक्त। और जब दफ्तर में बैठें तो दफ्तर में ही बैठें और दफ्तर में बैठकर खाना न खायें। और जब सिनेमा-गृह में जायें तो सिनेमा-गृह में

जायें उस वक्त मंदिर को बिलकुल वहाँ प्रवेश न करने दें। और जब मंदिर जायें तो मंदिर में हों, सिनेमा-गृह में न जायें।

प्रतिपल जहाँ आप हैं, वहाँ पूरे होने की कोशिश करें। कठिन होगी यह बात, लेकिन सरल बन जायेगी। कठिन होगी इसलिए कि हमारी आदतें सदा वहाँ होने की नहीं है, जहाँ हम हैं। सदा वहाँ होने की है जहाँ हम नहीं हैं, वहाँ आप होते ही नहीं। आपका वह जो मन है काम से भरा हुआ, वह कहीं और होता है। जब आप कलकत्ते में होते हैं तो मन बम्बई में होता है। जब आप बम्बई में होते हैं तो मन कलकत्ते में होता है। जहाँ हम हैं उस क्षण में हमारा मन वहाँ नहीं होता, इसलिए जहाँ हम नहीं हैं वहाँ से हमें काम का विस्तार करना पड़ता है और जोड़ना पड़ता है। वह जोड़ हमारी ऊर्जा को खोने का रास्ता है। अगर कोई व्यक्ति अभी जीने के लिए धीरे-धीरे, धीरे-धीरे समर्थ हो जाए और सरल है होना। सरल इसलिए है कि आप प्रयोग करेंगे तो आप बहुत हैरान हो जायेंगे कि खाना इतना आनन्दपूर्ण कभी नहीं था जितना आनन्दपूर्ण उस क्षण हो जाता है जिस समय आप खाना खाते वक्त पूरे मौजूद हैं, जिस वक्त आप खाना ही खा रहे हैं।

एक ज़ेन फकीर के पास एक सम्राट् मिलने गया था। वह फकीर अपने बगीचे में गढ़ा खोद रहा था। उस सम्राट् ने कहा कि आपसे मैं कुछ ज्ञान सीखने को आया हूँ। उस फकीर ने कहा, बैठो और देखो और सीखो। सम्राट् बैठ गया, वह फकीर अपना गढ़ा खोदता रहा। सम्राट् ने कहा, कुछ कहियेगा भी? आप तो गढ़ा ही खोदे चले जा रहे हैं। फकीर ने कहा, गौर से देखो—मैं हूँ ही नहीं, बस गढ़ा खोदना ही है। गढ़ा खोदना ही हो रहा है। मैं हूँ ही नहीं। मैं इतना पूरा लीन हूँ गढ़ा खोदने में कि मुझे अलग करने की कोई जरूरत नहीं। मैं गढ़ा खोद रहा हूँ ऐसा कहना गलत है। मैं गढ़ा खोदने की त्रिया हो गया हूँ ऐसा ही कहना ठीक है, तुम भी देखने की क्रिया हो जाओ। कृपा करके उस बात को मत सोचो कि जब मैं बोलूँगा तो क्या बोलूँगा। तुम कृपा करके यहाँ सिर्फ देखना हो जाओ। उस सम्राट् ने कहा यह तो बड़ा मुश्किल है, सिर्फ देखना। मुझे लौटना भी है। तो उस फकीर ने कहा, लौट जाओ लेकिन तब लौटना ही हो जाओ। और उस सम्राट् ने कहा, मुझे आपसे कुछ पूछना भी है। तो उस फकीर ने कहा, फिर पूछ लो फिर प्रश्न ही बन जाओ।

हम जो भी कर रहे हैं, हम वही नहीं हैं। अगर आप क्रोध करते वक्त पूरा क्रोध बन जायँ, तो शायद दोबारा क्रोध कर न सकें। लेकिन क्रोध करते वक्त क्षमा माँग रहे हैं। भीतर क्रोध करते वक्त प्रायश्चित्त कर रहे हैं। भीतर क्रोध करते वक्त जान रहे हैं कि बड़ा बुरा कर रहा हूँ। तब आप क्रोध में भी पूरे नहीं हो पाते।

जिस प्रेमी को मिलने के लिए वर्षों प्रतीक्षा की, जब वह मिल जाता है तब हम कुछ और सोचते हैं। जिस प्रेमी को मिलने के लिए वर्षों सोचा था, वह जब मिल जाता है और पास बैठ जाता है तब हम उसे भूल जाते हैं और कुछ और सोचते हैं। जिस धन को खोजने के लिए वर्षों मेहनत की थी, जब वह मिल जाता है, तिजोरी की चाबी लगाके, बाहर बैठके हम कुछ और सोचने लगते हैं। हम पूरे वक्त चूकते चले जाते हैं। हम सदा ही भविष्य में अपनी शक्ति को व्यय करते रहते हैं।

अगर शक्ति को संग्रहीत करना है और शक्ति के संग्रहीत हुए बिना कोई अन्तर्यात्रा संभव नहीं, तो हमें वर्तमान में जीना सीखना होगा। वर्तमान के साथ बड़ी खूबी है। वर्तमान सरकुलर है। एक नदी है वह वन-डायमेन्शनल है। वह भागी जा रही है, वह पूरे वक्त भागी जा रही है सागर की तरफ। वन-डायमेन्शनल है, उसमें एक आयाम है। भागी जा रही है। एक सरोवर है, वह भाग नहीं सकता, वह गोल है। वह अपने भीतर ही घूमता है। सारी भ्रमण-यात्रा उसकी भीतर है। जिस क्षण आप वर्तमान के क्षण में होते हो, उस क्षण आप सरोवर की भाँति हो जाते हैं, गोल। वर्तुलाकार शक्ति आपके भीतर घूमने लगती है, क्योंकि बाहर जाने के लिए कोई मौका नहीं मिलता, मौका मिलता है भविष्य में। कल क्या करूँगा, इससे तत्काल मौका मिल जाता है। कल क्या होगा तत्काल मौका मिल जाता है। अभी हूँ, यहाँ हूँ। आप मुझे यहाँ सुन रहे हैं। अगर आप मुझे सिर्फ सुन रहे हैं, तो आप जरा-सी भी शक्ति नहीं खोयेंगे। आप एक वर्तुलाकार व्यक्तित्व बन गये। नान-डायमेन्शनल। अब आपका कोई आयाम नहीं रहा। अब आप बह नहीं सकते अगर सिर्फ सुन रहे हैं। अगर सुनने के साथ सोच रहे हैं तो आप थक जायेंगे। आपकी शक्ति क्षीण होगी। अगर मैं सिर्फ बोल रहा हूँ तो मैं थकने वाला नहीं हूँ, अगर मुझे बोलने के साथ सोचना भी पड़ रहा है, तो मैं थक जाऊँगा। अगर कोई भी क्रिया पूरी हो रही है तो शक्ति नहीं खोती, शक्ति संग्रहीत होती है। कोई भी क्रिया अगर टोटल है तो शक्ति संग्रहीत होती है। प्रेम अगर पूर्ण है तो शक्ति लाता है। क्रोध अगर पूर्ण है तो वह भी शक्ति खोता नहीं। जो भी पूर्ण हो जाता है, वह खोता नहीं और बड़े मजे की बात है कि अगर क्रोध पूर्ण हो जाय तो आप क्रोध से मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि वह व्यर्थ मालूम पड़ता है। अगर आप प्रेम में पूर्ण हो जायें तो आप प्रेम से भर जाते हैं क्योंकि वह बहुत सार्थक मालूम पड़ता है।

जिस क्रिया को पूर्णता से किया जा सके उसे मैं पुण्य कहता हूँ। और जिस क्रिया को पूर्णता में किया ही न जा सके, उसे मैं पाप कहता हूँ। पाप और पुण्य की और कोई कसौटी जगत् में नही है।

अगर आप क्रोध को पूरी तरह कर सकते हैं और फिर दुबारा भी कर सकते हैं तो फिर क्रोध पाप नहीं है, लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ। आप क्रोध को अधूरा करते हो इसलिए दुबारा फिर कर पाते हो। अगर आप क्रोध को एक बार पूरा कर लें, तो आपके चारों ओर नरक उपस्थित हो जायेगा, जिस नरक को आपने शास्त्र में पढ़ा है। वह आपके आस-पास खड़ा हो जायेगा और दुबारा आप उस नरक में प्रवेश, आप नहीं चाहेंगे फिर आप माफी नहीं माँगेंगे किसी से। बस, क्रोध से बाहर हो जायेंगे। आग इतनी जोर से लगेगी कि उससे बाहर होने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं रहेगा। लेकिन हम कुनकुनी आग में जीते हैं, "ल्युकवार्य"। थोड़ा-थोड़ा करते रहते हैं तो जिन्दगी भर चलता रहता है। चुकता भी नहीं और चलता भी रहता है। नरक पूरा बन जाये तो स्वर्ग में जाने में देर नहीं। लेकिन नरक भी हम इतने धीरे-धीरे बनाते हैं कि वह कभी पूरा नहीं बन पाता, इससे छुटकारा नहीं हो पाता।

इसलिए पहला सूत्र आपसे कहता हूँ अकाम की यात्रा के लिए और काम के ऊर्ध्वगमन के लिए। वह है प्रतिपल जीना। संन्यासी का अर्थ घर छोड़ के भाग जाना नहीं। संन्यासी का अर्थ जो प्रतिपल जी रहा है जो पल के बाहर नहीं जीता, जो अभी जीता है, यहीं जीता है, और कहीं नहीं जीता। जो भी व्यक्ति ऐसी चित्त-दशा में आ जाये, वह संन्यासी है।

संन्यास का अर्थ है 'टु बी इन दी प्रेजेन्ट,' 'टु बी इन दी लीविंग मोमेन्ट' वह जो जीवन्त-क्षण है उसमें अगर हम हैं तो हमारी शक्ति ऊपर उठनी शुरू हो जाती है। यह बड़े मजे की बात है कि अगर यह जीवन्त-क्षण हमारे चारों ओर से घेर ले—क्रोध में भी हम पूरे हो सकें तो क्रोध से हम मुक्त हो जायेंगे और अगर यौन में भी, सेक्स में भी पूरे हो सकें तो सेक्स से हम मुक्त हो जायेंगे। क्योंकि जो व्यक्ति संभोग के क्षण में, सेक्स के क्षण में, यौन के क्षण में पूरी तरह मौजूद है, वह संभोग से मुक्त हो जायेगा। उसके लिए बात व्यर्थ हो गयी। वह बात इतनी राख हो गयी कि अब दुबारा उसके लिए कोई रस नहीं, लेकिन हम उस क्षण में भी पूरे वहाँ नहीं होते। आदमी आतुर है संभोग के लिए। चौबीस घंटे दौड़ रहा है। पूरी जिन्दगी दौड़ रही है। धन कमा रहा है, मकान बना रहा है, बहुत गहरे में सेक्स की तृप्ति की दौड़ चल रही है। सब हो जाये तो वह उसकी तृप्ति कर सके और फिर जब सेक्स का क्षण आता है तब वह उसमें पूरा नहीं। तब वह फिर दूसरी हजार बात सोचने लगता है। ब्रह्मचर्य अच्छा है वह सोचने लगता है। ब्रह्मचर्य परम जीवन है, जब सेक्स का क्षण आता है—तब वह यह सोचता है। और जब ब्रह्मचर्य की कसम खाता है तब सेक्स का विचार

करता है। यह आदमी पागल है। यह पागलपन हमारी जिन्दगी की ऊर्जा को कभी भी ऊपर नहीं जाने देगा।

इसलिए पहला सूत्र आपसे कहता हूँ पल-पल जीना, तो आपके भीतर अकाम शुरू हो जायेगा, काम क्षीण होने लगेगा, क्योंकि काम के लिए भविष्य जरूरी है। कामना के लिए काम जरूरी है। सच तो यह है कि कल अस्तित्व में होता ही नहीं सिर्फ कामना में होता है "इट इज बाय प्रोडेक्ट ऑफ डिजायर" कल तो होता ही नहीं। कल तो कहीं है ही नहीं। कल सिर्फ वासना की उत्पत्ति है। भविष्य कहीं है ही नहीं। जो है वह सदा वर्तमान है। भविष्य सिर्फ कामना की उत्पत्ति है।

हम निरंतर कहते हैं कि समय के तीन हिस्से हैं—भविष्य, वर्तमान, अतीत। गलत कहते हैं। समय का तो सिर्फ एक ही रूप है वर्तमान। समय के तीन रूप नहीं हैं। समय का एक ही रूप है वर्तमान। समय तो हमेशा अभी है। यह भविष्य और अतीत कहाँ से पैदा हुआ? अतीत हमारी स्मृतियों से पैदा हुआ और भविष्य हमारी कामनाओं से पैदा हुआ।

पहला सूत्र काम-मुक्ति का। वर्तमान के क्षण में होने की कोशिश। जंगल जाने को नहीं कहता। जहाँ आप हैं वहाँ पूरी तरह आप हों। भोजन करें तो पूरी तरह और सोयें तो पूरी तरह, स्नान करें तो पूरी तरह और बहुत छोटी चीजों से शुरू करें।

दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूँ—सृजनात्मक हों, "बी क्रीयेटिव"। जो आदमी सृजनात्मक नहीं है, उसकी ऊर्जा निरंतर सेक्स से बहना चाहेगी, क्योंकि वह भारी हो जायेगा। उसके पास शक्ति तो होगी, काम नहीं होगा और हम "क्रीयेटिव" बिलकुल नहीं हैं। हमारे जीवन में सृजन जैसी कोई चीज नहीं है। हमने कोई चीज ऐसी नहीं बनायी है, जिसे हम कहें सृजनात्मक है। इसका मतलब क्या? नहीं—आप कहेंगे हमने बनाया है। हमने कुर्सी बनायी है। हम फर्नीचर बनाते हैं। हम मकान बनाते हैं। हम कपड़े बनाते हैं। हम सृजनात्मक हैं। नहीं, यह सृजन नहीं है।

सृजन और निर्माण का फर्क समझ लें। निर्माण का मतलब है कोई उपयोगी चीज बनाना। कुर्सी पर बैठा जा सकता है, उसका कोई उपयोग है। बाजार में उसका कुछ दाम है, इसलिए कुर्सी का बनाना सृजन नहीं है। इसलिए कुर्सी का बनाना "प्रोडक्शन", उत्पादन है। लेकिन एक आदमी गीत गाता है, कोई मूल्य नहीं है। एक आदमी एक चित्र बनाता है, कोई मूल्य नहीं है। एक आदमी नाचता है, कोई हेतु नहीं है। सृजन वहाँ से शुरू होता है जहाँ से उपयोगिता खत्म होती है। जहाँ तक उपयोगिता है वहाँ तक सृजन नहीं है। आप कुछ जिन्दगी में ऐसा भी करते

रहें जिसकी कोई उपयोगिता नहीं, सिवाय इसके कि इसे करने में ही आपको आनन्द आता है। जिन्दगी में ऐसा कुछ चलता रहे जिसे करने में आपको आनन्द आता है, जिसके अंतिम परिणाम से कोई संबंध नहीं।

वानगार्द ने चित्र बनाये, जब उसने बनाये थे तब उसको खरीदने के लिए कोई राजी नहीं था। एक चित्र वानगार्द की जिन्दगी में बिका नहीं। उसके छोटे भाई ने कभी यह ख्याल किया कि बिचारे का एक चित्र नहीं बिका कितना दुःखी होगा। उसने एक आदमी को पैसा दिया और कहा, तू मेरी तरफ से जाकर एक चित्र खरीद ले। कम-से-कम उसे एक तृप्ति तो मिले कि उसकी एक चीज तो बिकी। वह आदमी गया। कोई आदमी चित्र खरीदने आया—वानगार्द उसे चित्र बताने लगा, लेकिन वह कोई खरीददार तो न था। वह कोई चित्र को प्रेम करने वाला आदमी तो नहीं था। वह तो किसी का सिर्फ एजेन्ट था। पैसे भी किसी और के थे। कोई भी चित्र खरीद लेना था, उसने कोई भी चित्र उठाकर कहा, यह पैसे लो। वानगार्द की आँख से आँसू बहने लगे, उसने पैसे वापस कर दिये और कहा, मालूम होता है मेरे भाई ने तुम्हें भेजा है। वापस लौट जाओ। उसका भाई आया माफी माँगने। उसके भाई ने उससे पूछा कि जब तुम चित्र बेचना भी नहीं चाहते हो, तो बनाते किसलिए हो? वानगार्द ने कहा—बनाने में ही सब मिल जाता है। बनाते क्षण में ही मिल जाता है वह, जो चाहिए। जब मैं चित्र बनाता हूँ, तब ही सब मुझे मिल जाता है, अब और कुछ चाहिए नहीं।

जब कोई गीत गाता है, तब सब मिल जाता है गाने में। लेकिन हाँ, अगर गायक भी प्रशंसा के लिए आतुर हो तो बाजारू हो जाता है। वह सृजनात्मक नहीं है। अगर चित्रकार भी बाजार में बेचने के लिए चित्र बनाता है, तो यह कन्स्ट्रक्शन है, प्रोडक्शन है। यह क्रियेशन नहीं है।

हम कहते हैं कि परमात्मा ने जगत् बनाया, क्रीयेट किया, बनाया नहीं। बनाया—बड़े अर्थ की बात नहीं है, लेकिन परमात्मा को हम कहते हैं, उसने सृजन किया। उसका एक ही अर्थ है। हम नहीं कहते प्रोड्युस किया, परमात्मा ने उत्पादन किया। परमात्मा ने सृजन किया, सिर्फ इसलिए कि परमात्मा के लिए जगत् बनाना उपयोगिता नहीं है। उससे उसे कुछ मिलने वाला नहीं है। परमात्मा को इससे कुछ भी उपलब्ध होने वाला नहीं है। अगर कुछ भी मिला होगा, इसके बनाने में ही मिला होगा, इसके बनने में ही मिला होगा, अन्यथा इसके बाहर कुछ मिलने को नहीं।

जिस आदमी की जिन्दगी में कुछ ऐसे क्षण हैं जब वह आनन्द और सृजन में जीता है, वह आदमी धीरे-धीरे अकाम को उपलब्ध हो जायेगा, क्योंकि काम

की दूसरी शर्त है—"दी रीजल्ट"! कामना का आखिरी स्रोत, उद्गम का, दौड़ का, शक्ति का, एक ही है कि मिलेगा क्या? हम हमेशा पूछते हैं—लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं ध्यान हम करें, लेकिन ध्यान में मिलेगा क्या? उनको पता ही नहीं कि ध्यान का मतलब ही एक ऐसा काम है जिसमें कुछ मिलेगा नहीं, ध्यान ही मिलेगा। और ध्यान का मिलने का अपना अर्थ है।

हम जूता खरीदते हैं, तो जूते का दूकानदार यह नहीं कह सकता कि बस आप आनन्द से खरीद लें। मिलेगा कुछ नहीं। नहीं, जूता "युटीलिटी" है, अन्यथा कोई खरीदेगा नहीं। लेकिन आप अगर जूते की दूकान पर जिस भाँति जाते हैं उस भाँति मंदिर में गये और पूछा कि प्रार्थना से मिलेगा क्या? तो आप गलत जगह पर पहुँच गये। नहीं, जिन्दगी में जो भी महत्त्वपूर्ण है, उसका परिणाम नहीं है। महत्त्वपूर्ण उसका होना ही महत्त्वपूर्ण है जो अपने में महत्त्वपूर्ण होगा!

जिस व्यक्ति को धर्म के जगत् में प्रवेश करना हो और जिसे ऊर्जा को ऊपर ले जाना है उसे कुछ ऐसे काम खोजने पड़ेंगे जो काम नहीं है। जो सिर्फ खेल हैं—लीलाएँ हैं। इसलिए कृष्ण के जीवन को हम चरित्र नहीं कहते। राम के जीवन को चरित्र कहते हैं। राम का जीवन चरित्र है। बहुत गंभीर मामला है। राम हर चीज को बड़ी गंभीरता से ले रहे हैं, उनके लिए खेल नहीं है। उनके लिए जिन्दगी एक काम है। कृष्ण के लिए जिन्दगी एक खेल है। नाच रहे हैं, तो कुछ मिलने वाला नहीं है। बाँसुरी बजा रहे हैं, तो कुछ मिलने वाला नहीं है। राम तो जो भी कर रहे हैं उसमें कम-से-कम चरित्र मिलेगा, मर्यादा मिलेगी, वंश-परंपरा की प्रतिष्ठा मिलेगी। यह सब मिलना है, राम बहुत उपयोगितावादी हैं। इसलिए एक धोबी के कहने से पत्नी को बाहर कर सकते हैं। उपयोगिता में बाधा पड़ रही थी, राम की मर्यादा क्षीण हो जायेगी। राम के चरित्र पर धब्बा लग जायेगा। रघुकुल-परंपरा का क्या होगा? यश, वंश सब उपयोगिता है।

कृष्ण अगर राम की जगह होते तो सीता को निकाल नहीं सकते थे, हो सकता है, खुद ही बाँसुरी बजाते हुए भाग जाते। यह हो सकता था, सीता को नहीं फेंक सकते। अगर राम की जगह कृष्ण होते तो सीता की अग्नि-परीक्षा नहीं लेते—बहुत बेहूदी बात मालूम पड़ती, बहुत उपयोगितावादी बात मालूम पड़ती। प्रेम की भी कहीं परीक्षा होती है? और अगर प्रेम की भी परीक्षा होती है तो फिर इस जिन्दगी में बिना परीक्षा के कुछ भी नहीं बचेगा। सीता की परीक्षा ली जा सकी कि तुम आग से गुजरो क्योंकि प्रेम पवित्र है या नहीं। उसका पक्का होना चाहिए। प्रेम अपने आप में ही पवित्र है। प्रेम की और कोई पवित्रता नहीं हो सकती। सीता ने नहीं कहा राम से कि तुम भी गुजरो। तुम भी साथ चले आओ, क्योंकि

तुम भी अकेले थे, क्या भरोसा ? और स्त्री का तो थोड़ा-बहुत भरोसा हो सकता है, पुरुष का होना जरा मुश्किल है। लेकिन सीता ने नहीं कहा। सीता के लिए जिन्दगी एक गंभीरता नहीं है, एक खेल है, इसलिए सीता राजी हो गयी। निकल गयी। प्रेम परीक्षा नहीं माँगता, प्रेम सब परीक्षा दे सकता है। लेकिन कृष्ण तो बात ही नहीं करते, यह कोई सवाल ही नहीं था। इसलिए कृष्ण के जीवन को हम चरित्र नहीं कहते। कृष्ण के जीवन को हम लीला कहते हैं। कृष्ण-लीला है। लीला का मतलब है पूरी जिन्दगी "क्रीयेटिव" है। उपयोगिता नहीं है। जिन्दगी एक खेल है। धार्मिक आदमी की जिन्दगी गंभीर नहीं होती। और जो आदमी गंभीर है वह बोझिल हो जायेगा और जो बोझिल होगा, उसे सेक्स से रास्ता खोजना पड़ेगा।

इसलिए जिन्दगी जितनी गंभीर होती जा रही है उतनी "सेक्सुआलिटी" बढ़ती जा रही है, क्योंकि जितने आप गंभीर होंगे, उतने तनाव से भर जायेंगे। जितने तनाव से भर जायेंगे, उतनी रिलीफ की जरूरत पड़ेगी। जिस मुल्क में जितना तनाव है, उतनी ज्यादा कामुकता बढ़ जायेगी, क्योंकि और कोई रास्ता नहीं दीखता। चित्त बोझिल हो जायेगा। शक्ति को बाहर फेंको, हल्के हो जाओ। एक ही रास्ता रह जायेगा।

दूसरा सूत्र आपसे कहता हूँ—जिंदगी को गंभीरता से मत लेना। गंभीरता बुनियादी रोग है, लेकिन आमतौर से संन्यासी साधु बहुत गंभीर होता है। सच तो यह है कि अगर चेहरा गंभीर और रोता हुआ न हो तो साधु होने की योग्यता पूरी नहीं होती। क्वालीफिकेशन जरूरी है वह, इसलिए अक्सर रोते हुए लोग साधु-संन्यासी हो जाते हैं। साधु-संन्यासी होने की वजह से रोते हुए दिखाई पड़ते हैं, ऐसा मत समझना; रोते हुए थे, इसलिए साधु-संन्यासी हो जाते हैं। क्योंकि वहाँ उनके रोने को भी प्रतिष्ठा और आदर मिलने लगता है। वैसे रोते हुए दिखाई देते तो कोई नहीं पूछता कि यह क्या शक्ल ले कर घूम रहे हो ? लेकिन संन्यास में वह शक्ल प्रतिष्ठित हो जाती है। नहीं, जिन्दगी गंभीरता नहीं है। और जो जिन्दगी में गंभीर है वह काम से मुक्त नहीं हो सकेगा। जिन्दगी खेल बन जाये तो आदमी काम से मुक्त हो जाता है। पर पूरी जिंदगी को नहीं कह रहा हूँ, कि आप खेल बना लें, शायद वह संभव नहीं है; लेकिन जिन्दगी में कुछ तो हो, जो खेल हो। बच्चे कितने हल्के हैं। और ध्यान रहे बच्चे इतने अकामी हैं, उसका कुल कारण इतना है कि बच्चों की जिन्दगी गंभीर नहीं है, एक खेल है, जिन्दगी एक लीला है। बच्चा खेल रहा है, गंभीर नहीं है। जैसे-जैसे बच्चा गंभीर होता जायेगा, वैसे-वैसे उसकी जिन्दगी में सेक्स आता जायेगा।

क्या आपको पता है "सेक्सुअल-मैच्युरिटी" की उम्र रोज नीचे गिरती जा रही है ? चौदह साल से अमरीका में बारह साल हो गया, ग्यारह साल हो गया, कुछ लड़कियाँ ग्यारह साल में 'मेच्योर' होने लगी हैं और संभावना इस सदी के अंत में "मेच्योरिटी" की उम्र सात साल तक भी आ सकती है। सात साल का मामला क्या है ? लड़कियाँ हमेशा चौदह साल में मेच्योर होती थीं, सात साल में क्यों होने लगीं ?—असल में सात साल में ही लड़कियाँ इतनी गंभीर हो गयी हैं अब, जितनी चौदह साल में पहले हुआ करती थीं। जिन्दगी सात साल में ही काफी भारी हो गयी। शिक्षा, व्यवस्था, शिष्टाचार, सभ्यता, संस्कृति रोज़ भारी होती जा रही है। छोटे बच्चे जितने भारी हो जायेंगे, उतनी जल्दी उन्हें सेक्स की शक्ति बाहर फेंकने के लिए मार्ग खोजना पड़ेगा। इससे उल्टा भी हो सकता है। अगर हम बच्चों को देर तक हल्का रख सकें तो शायद बीस साल-पच्चीस साल तक मेच्यो-रिटी की उम्र बढ़ा सकते हैं।

हम कहानियाँ सुनते हैं लेकिन हमें पता नहीं है, और जो गुरुकुल चलते हैं उनको भी पता नहीं कि मामला क्या है। क्योंकि गुरुकुल चलाने वाले लोग तो आम तौर से गंभीर होते हैं, लेकिन पच्चीस साल तक किसी जमाने में हम गुरुकुल में युवकों को काम से, सेक्स से, बाहर रख सके थे। उसका कारण क्या था ? उसका कारण था हम पच्चीस साल तक उन्हें गंभीर होने से बचा सके थे और कोई कारण नहीं था। जितनी गंभीरता बढ़ेगी उतना बोझ बढ़ जायेगा, जितना बोझ बढ़ेगा, तनाव हो जायेगा। जितना तनाव हो जायेगा उतना निकास चाहिए। हम पचीस साल तक उनको गंभीर होने से बचा सके। हमने पचीस साल तक उनकी जिन्दगी को खेल बनाया था। न परीक्षाओं की गंभीरता थी, न जिन्दगी से लड़ने की गंभीरता थी, न उत्तरदायित्व। जिन्दगी एक खेल था जंगल में। उस खेल के बीच सब बहुत आहिस्ता चल रहा था। लकड़ियाँ काट रहे थे, दौड़ रहे थे, खेती करते थे, यह सब करते थे। कभी घंटा आधा घंटा पढ़ना था, पढ़ना कोई गंभीर काम नहीं था—फुरसत के क्षण में हुई बातचीत, निकट गुरु के पास बैठ कर थोड़ी बात कर लेते थे। पच्चीस साल तक अगर वे काम के बाहर रह जाते तो इससे कोई आश्चर्य नहीं। और आज आपके बच्चे चौदह साल में काम की दृष्टि से पूरे प्रौढ़ हो जाते हैं, तो उसमें भी कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि आप उन्हें पूरे गंभीर बनाने की योजना किये हुए हैं।

जिस आदमी को अकाम को उपलब्ध होना है। उसे जिन्दगी से गंभीरता को अलग कर देना चाहिए अन्यथा बोझ हो जायेगा, और बोझ उसे काम में ले जायेगा। कैसे यह होगा—दो-चार काम तो हर आदमी खोज सकता है जो गैर-गंभीर हों।

कभी आप अपने बच्चे को लेकर साथ घर में खेलते हैं ? आप कहेंगे कैसी पागलपन की बात कर रहे हो, बच्चों के साथ और खेल ! बाप जब भी बेटे से मिलता है– एक तो मिलता ही नहीं, कभी कोई गंभीर मौका आ जाय तो मिलता है। बेटा जब बाप से मिलता है तो गंभीर मिलता है। वह भी बाप से बचा रहता है। बाप को जब कोई उपदेश देना होता है तब बेटे से मिलता है। बेटे को जब कुछ पैसे लेना होता है तब बाप से मिलता है। ऐसे दोनों बच कर निकलते रहते हैं।

नहीं, कभी आप बच्चों के साथ घर में खेलते हैं, इसे जरा प्रयोग करके देखें। वह परिवार परिवार नहीं है जिनके सारे लोग मिलकर एक घंटा न खेलें; और आप हैरान होंगे—एक घंटा खेल के देखें और एक महीने भर में आप फर्क पायेंगे। आपकी काम-शक्ति में फर्क पड़ने लगेगा। एक काम तो मिला गैर-गंभीर होने का। आप घर में बैठ के क्या करते हैं? अखबार पढ़ते हैं, अखबार बड़ा गंभीर मामला है। करते क्या हैं घर में बैठकर? छह घंटा दुकान या दफ्तर में बैठने के बाद घर में करते क्या हैं ? चित्र बनाते हैं कभी, घर की दीवाल रंगते हैं ? कैसी बेहूदी बात है कि घर की दीवाल रंगने के लिए भी हमें बाहर से दूसरे आदमी लाने पड़ते हैं—अपनी दीवाल भी नहीं रंग सकते। किसी दीवाल पर चित्र बनाते हैं ? जरूरी नहीं कि वह चित्र कोई बड़े चित्रकार जैसे हों, जरूरी यह है कि वह आपसे निकले। अब बड़े मजे की बात है कि मेरी दीवाल पर अगर दूसरे चित्रकार का चित्र है तो उसे मेरी दीवाल कहने का हक भी क्या है ? उधार है, बासा है। मेरी दीवाल पर मेरे हाथ का चित्र होना चाहिए। कभी घर में बैठ के नाचते हैं सबको इकट्ठा करके, घर के लोग नाचने लगते हैं ? नहीं, आप कहेंगे यह कैसी बातें कर रहे हैं।

अगर घर में एक आदमी धार्मिक हो जाये तो सबको बैठा कर वह ऐसा उदासी और ऐसा रोने का वातावरण तैयार करवाता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन घर में अगर आप घंटे भर नाचते हैं, नाचने के लिए विधि और व्यवस्था की जरूरत नहीं कि आप कथक या भारत नाट्यम् सीखें। कूद तो सकते हैं। अगर एक घंटे घर में आप मौज से कूदते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, चित्र देखते हैं तो आप पायेंगे आपकी जिन्दगी में कामुकता कम होने लगी जो हजार ब्रह्मचर्य के नियम लेने से कम नहीं होगी। वह कम होने लगेगी, क्योंकि आपकी जिन्दगी में सृजनात्मक काम शुरू हो गया। हर आदमी दुनिया में छोटा-मोटा कवि है, हर आदमी छोटा-मोटा चित्रकार है, और हर आदमी छोटा-मोटा संगीतज्ञ है, हर आदमी छोटा-मोटा नृत्यकार है। और सबको यह सब होना चाहिए और आप इससे गुजरेंगे तो हैरान हो जाओगे कि आपके चित्त पर जो बोझ था वासना का, वह सृजनात्मक हो गया। एक बार शक्ति सृजनात्मक होनी शुरू हो तो ऊपर बहनी

शुरू हो जाती है, इससे उलटा भी होता है, अगर आपकी शक्ति सृजनात्मक न हो पाये तो विध्वंसात्मक हो जाती है।

यह आपको जानकर हैरानी होगी कि हिटलर चित्रकार होना चाहता था– माँ-बाप ने चित्रकार नहीं होने दिया। अब किसी दिन भविष्य की अदालत में शायद यह तय करना मुश्किल होगा कि इस बड़े महायुद्ध के लिए हिटलर जिम्मेदार है कि उसके माँ-बाप जिम्मेदार हैं। क्योंकि हिटलर अगर चित्रकार हो जाता तो कम-से-कम दूसरा महायुद्ध तो नहीं होने वाला था। लेकिन हिटलर चित्रकार नहीं हो पाया। उसके भीतर जो ऊर्जा सृजनात्मक बन सकती थी वह अटक गयी, और विध्वंसक हो गयी। वह कुछ बनता, वह नहीं बन पाया, उसने कुछ मिटाना शुरू कर दिया। ध्यान रहे अगर आप बनायेंगे नहीं तो आप मिटायेंगे जरूर। अगर आप सृजन नहीं करेंगे तो विध्वंस करेंगे। इन दो के बीच उपाय नहीं और इन दो के बीच यदि आपको टिकना हो तो फिर आपके पास ऊर्जा ही नहीं चाहिए, फिर आप बिलकुल शक्तिहीन हो जाइये। अगर ऊर्जा होगी तो कुछ करेगी— सृजन करेगी या विध्वंश करेगी।

तो आप अपनी जिंदगी में दूसरा सूत्र अकाम की तरफ बढ़ने के लिए सृजनात्मक हों–दो चार क्षण भी क्रीयेटिव हों, सृजन में लग जाएँ, बगीचे में काम कर सकते हैं, नाच सकते हैं, गीत गा सकते हैं। गंभीरता को कुछ देर के लिए अलग कर दें, गैर-गंभीर हो जायँ, हल्के हो जायँ, कुछ देर के लिए जवान न रह जायँ, बूढ़े न रह जायँ, बच्चे रह जायँ। और जो आदमी बुढ़ापे में भी घंटे भर के लिए बच्चा हो सकता है–उसकी जिन्दगी बदलनी शुरू हो जाती है। उसकी ऊर्जा फिर बचपन की तरह संग्रहीत होने लगती है।

और तीसरी अंतिम बात।

एक, पल-पल जीयें; भविष्य और कामना से मुक्त हों; दो, सृजनात्मक बनें––उपयोगिता काफी नहीं है अर्थपूर्ण काम काफी नहीं है, अर्थहीन काम भी जरूरी है। चरित्र ही बनाने में न लगें थोड़ी-सी लीला भी जीवन में आने दें। और तीसरी अंतिम बात जब भी मौका मिल जाए तो होशपूर्वक समस्त इन्द्रियों के द्वार बन्द करके भीतर देखें।

चौबीस घंटे हम बाहर देखते हैं। जब भीतर देखने का मौका आता है तब हम सो गये होते हैं–जब भीतर देखना नहीं हो पाता, या तो बाहर देखते हैं या नहीं देखते हैं, दो काम हैं हमारी जिन्दगी में। दिन में बाहर देखते, रात में सो जाते और कुछ लोग स्वप्न देखते हैं, वह भी बाहर देखना ही है। थोड़ी देर होशपूर्वक चौबीस घंटे में आँख बन्द कर के भीतर देखें। क्या मतलब भीतर देखने का?

आँख बन्द करें और भीतर देखने की कोशिश करें। सिर्फ देखने की कोशिश, आँख बन्द करें—अँधेरा दिखाई पड़े तो अँधेरे को ही देखें। कोई स्वप्न दिखाई पड़े, उसे देखें। भीतर जो भी होता है इंद्रियों को बन्द करके देखने की कोशिश करें।

पहले आँख से शुरू करें, क्योंकि आँख हमारी सबसे महत्त्वपूर्ण इन्द्री बन गयी है। फिर भीतर सुनने की कोशिश करें जो भी सुनाई पड़े उसे सुनने की कोशिश करें। फिर सूँघने की कोशिश करें, फिर भीतर स्वाद लेने की कोशिश करें। इन्द्रियों से जो जो बाहर किया है वह भीतर करने की कोशिश करें, और दंग हो जायेंगे। भीतर के अपने नाद हैं। भीतर की अपनी ध्वनियाँ हैं। भीतर के अपने रंग हैं। भीतर के अपने स्वाद हैं। भीतर की अपनी सुगंध है। और धीरे-धीरे वह पैदा होनी शुरू हो जायेगी और जिस दिन आपके भीतर का रंग आपको दिखाई पड़ेगा, उस दिन बाहर के रंग एकदम अनरीअल मालूम पड़ने लगेंगे। फिर बाहर जाने की इच्छा बंद होने लगेगी। बाहर का संगीत एकदम बेमानी हो जायेगा, शोरगुल मालूम पड़ेगा। जिस दिन भीतर की सुगंध का अनुभव होगा उस दिन फ्रेंच बाजारों की सारी परफ्युम भी बेकार मालूम पड़ेगी। और जिस दिन भीतर के सौंदर्य का बोध होगा, बाहर कोई सौंदर्य न रह जायेगा।

तो तीसरा सूत्र जब भी मौका मिले तो कुछ भीतर करने की कोशिश करें। चौबीस घंटा बाहर ही बाहर करने की कोशिश न करें। क्योंकि जहाँ हम करते हैं ऊर्जा उसी तरफ बहनी शुरू होती है। अगर हम बाहर कुछ करते हैं तो ऊर्जा बाहर बहती है। अगर हम भीतर कुछ करते हैं तो ऊर्जा को भीतर बहना पड़ता है। जहाँ काम है ऊर्जा को वहीं जाना पड़ता है। जहाँ काम है ऊर्जा उसी ओर दौड़ पड़ती है। तो भीतर ऊर्जा दौड़ने लगे।

यह तीन सूत्र आप करें और आप हैरान हो जायेंगे कि जिंदगी से काम चला गया, अकाम उपलब्ध हुआ—ऊर्जा भीतर इकट्ठी होगी, ऊपर उठेगी, अंतस्तल के और द्वार खुलेंगे। दूसरे चक्र सक्रिय होंगे और भीतर के रस और भीतर के अमृत झरने लगेंगे। अकाम अंततः अमृत बन जाता है और काम अंततः मृत्यु बन जाता है। काम है मृत्यु की खोज। अकाम है अमृत की खोज। कल पाँचवें और अंतिम सूत्र अप्रमाद पर आप से बात करूँगा।

अप्रमाद का अर्थ है अमूर्छा, अप्रमाद का अर्थ है अवेरनेस। चार दिन जो हमने कहा है, कल उस साधना की हम बात करेंगे। ताकि चार दिन जो कहा है उसे उपलब्ध कर सकें। कल साधना की बात है।

क्या करें कि अहिंसा आ जाए। क्या करें कि अचोरी आ जाए। क्या करें कि अपरिग्रह आ जाए। क्या करें कि अकाम आ जाए। कौन-सा है मार्ग? कौन-सा है द्वार? कौन-सा है सूत्र? उसकी बात कल करेंगे।

•

अप्रमाद

•

पाँचवाँ महाव्रत

मनुष्य एक सात मंजिला मकान है, सेवन-स्टोरी-हाउस, लेकिन हम एक मंजिल में ही जीते और मर जाते हैं। पहले हम सात मंजिलों का नाम आपको समझा दें। जिस मंजिल में हम जीते हैं, उस मंजिल का नाम कॉन्सीयस, चेतन। उस मंजिल के ठीक नीचे दूसरी मंजिल है, जो तलघरे में है, जमीन के नीचे है, उस मंजिल का नाम है अनकॉन्सीयस, अचेतन। उससे भी थोड़ा और नीचे पाताल की तरफ तीसरी मंजिल है, उसका नाम है कलेक्टिव अनकॉन्सीयस, समष्टि अचेतन। और उसके नीचे एक चौथी मंजिल है, और भी नीचे, उससे भी नीचे, उस मंजिल का नाम है, कॉस्मीक-अनकॉन्सीयस, ब्रह्म-अचेतन। जिस मंजिल पर हम रहते हैं उसके ऊपर भी एक मंजिल है, उस मंजिल का नाम है सुपर-कॉन्सीयस, अति-चेतन। उसके ऊपर एक मंजिल है जिसको कहें कलेक्टीव-कॉन्सीयस, समष्टि चेतन। और उसके ऊपर एक मंजिल है जिसे कहें कॉस्मीक-कॉन्सीयस, ब्रह्म-चेतन। जहाँ हम ह उसके ऊपर तीन मंजिल हैं और उसके नीचे तीन मंजिल हैं। यह मनुष्य का सात मंजिल वाला मकान है। लेकिन हममें से अधिक लोग चेतन मन में ही जीते और मर जाते हैं। आत्मज्ञान का अर्थ है इसी पूरी सात मंजिल की व्यवस्था से परिचित हो जाना। इसमें कुछ भी अपरिचित न रह जाय, इसमें कुछ भी अनजान न रह जाय। क्योंकि इसमें से कुछ भी अन-जाना है तो मनुष्य अपना मालिक, अपना सम्राट् कभी नहीं हो सकता। जो अनजाना है वही उसकी गुलामी है। वह जो अशांत है, वह जो अंधकार पूर्ण है, वही उसका बंधन है, वह जो नहीं जाना गया। अज्ञान ही हार है और ज्ञान ही विजय की यात्रा है।

इस सात मंजिल के भवन में हम सिर्फ एक मंजिल को जानते हैं जिसमें हम अपने को पाते हैं, जहाँ हम हैं। इस मंजिल में ही जीते रहने का नाम प्रमाद है। इस मंजिल में ही बने रहने का नाम प्रमाद है। प्रमाद का अर्थ है मूर्छा, प्रमाद का

अर्थ है बेहोशी, प्रमाद का अर्थ है निद्रा, प्रमाद का अर्थ है तंद्रा, प्रमाद का अर्थ है सम्मोहित अवस्था। हम इस एक मंजिल से इस तरह हिप्नोटाइज़ हो गये हैं, हम इस एक मंजिल से इस तरह सम्मोहित हो गये हैं कि हम इधर-उधर देखते ही नहीं, हमें पता भी नहीं चल पाता है कि हमारे व्यक्तित्व में, हमारे जीवन में, हमारे होने में और भी बहुत फैलाव है।

साधना का अर्थ है इस प्रमाद को तोड़ना, इस मूर्छा को तोड़ना। स्वभावतः इसे मूर्छा क्यों कहें? इसे प्रमाद क्यों कहें? एक आदमी के पास सात मंजिल का मकान हो और वह एक ही मंजिल में रहता हो और उसे दूसरी मंजिलों का पता न चले तो हम क्या कहेंगे? क्या वह आदमी जगा हुआ है? यदि वह आदमी जगा हुआ है तो उसके बाकी मंजिलों से अपरिचित रहने की संभावना नहीं है। हाँ, यही हो सकता है कि एक आदमी अपने मकान की एक ही मंजिल से परिचित हो और छह मंजिल से अपरिचित हो। यह तभी संभव है जब वह एक मंजिल में हो और सोया हुआ हो, अन्यथा उसे पता चलना शुरू हो जायेगा। हम सोये हुए हैं, इसलिए हम जहाँ हैं वहीं जी लेते हैं। हमें कुछ और पता नहीं चलता।

पश्चिम का मनोविज्ञान अभी तक इतना ही मानता था कि यह जो चेतन मन है, यह जो कन्सीयस-माइन्ड है यही मनुष्य है, लेकिन जैसे-जैसे उन्होंने सोच-विचार किया, थोड़ी खोज की तो फ्राइड को पहली दफा अनुमान आना शुरू हुआ कि नीचे कुछ और भी है, चेतन ही सब कुछ नहीं है, नीचे कुछ है और वह ज्यादा महत्त्वपूर्ण मालूम हुआ। अनकॉन्सीयस की खोज फ्राइड ने की। अचेतन की खोज की और पश्चिम के मनोविज्ञान ने दो बातें स्वीकार कर लीं, चेतन-मन और अचेतन-मन। लेकिन फ्राइड की खोज अनुमान है, अनुभव नहीं। अनुभव साधना के बिना नहीं हो सकता। हम अपनी मंजिल पर रहते हैं। हमें कभी-कभी शक होता है नीचे भी कुछ आवाज आती है। पता नहीं नीचे भी कुछ हो। कभी-कभी नीचे से धुआँ आ जाता है, कभी-कभी नीचे से आग की लपटें आ जाती हैं और हमें लगता है नीचे भी जरूर कुछ होना चाहिए। लेकिन यह अनुमान है। रहते हम अपनी ही मंजिल में हैं, हम नीचे उतर कर नहीं गये, यह अनुभव नहीं है।

फ्राइड ने पश्चिम में जिस अनकॉन्सीयस की बात की है वह फ्राइड का अनुभव नहीं है, अनुमान है। इसलिए पश्चिम का मनोविज्ञान अभी भी योग नहीं बन पाया। मनोविज्ञान उस दिन योग बन जायेगा जिस दिन अनुमान अनुभव बनता है। और मजे की बात है कि फ्राइड जैसा खोजी आदमी जो कहता है नीचे कुछ और भी है, मनुष्य के, जिसका मनुष्य को पता नहीं, वह भी इस नीचे के मन से इसी तरह प्रभावित होता है, जैसे वे लोग प्रभावित होते हैं जिन्हें पता नहीं है।

अनुमान से कोई बहुत फर्क नहीं पड़ सकता। फ्राइड को उसी तरह क्रोध पकड़ लेता है जैसे उन लोगों को पकड़ता है जिन्हें अचेतन का कोई पता नहीं है। फ्राइड को उसी तरह से चिन्ताएँ पकड़ती हैं जैसे उन्हें पकड़ती हैं जिन्हें अचेतन का कोई पता नहीं है। अचेतन का जो काम है वह फ्राइड के ऊपर उसी भाँति जारी है जिस भाँति उन पर जारी है जिन्हें अचेतन का कोई ख्याल नहीं है। अनुमान है, लेकिन अनुमान भी बड़ी बात है। फिर फ्राइड के एक सहयोगी ने काम करते-करते अनकॉन्सीयस के नीचे का भी अनुमान कर लिया, गुस्ताक जुंग ने कलेक्टीव अनकॉन्सीयस का भी अनुमान कर लिया कि वह जो अचेतन मन है उसके नीचे भी कुछ चीजें मालूम पड़ती हैं। वहीं सब खतम नहीं हो जाता। लेकिन वह भी अनुमान ही है, अनुभव नहीं है। योग अनुभव की यात्रा है। योग सिर्फ विचार नहीं है, योग अनुभूति है।

यह जो तीन मंजिलें ऊपर फैली हैं और तीन मंजिलें नीचे फैली हैं, इनका हमें तब तक पता नहीं चलेगा जब तक हम अपनी मंजिल में सोये हुए हैं। इसलिए पहले हम अपने सोये हुए होने के तथ्य को ठीक से समझ लें तो जागने की यात्रा शुरू हो सकेगी।

क्या आपने कभी ख्याल किया कि आप सोये हुए आदमी हैं? शायद नहीं ख्याल किया होगा, क्योंकि सोये हुए आदमी को इतना भी पता चल जाय कि मैं सोया हुआ हूँ तो जागने की शुरुआत हो जाती है। असल में इतनी बात का पता चलना कि मैं सोया हुआ हूँ जागने की खबर है। नींद में यह भी पता नहीं चलता कि मैं सोया हुआ हूँ, यह भी पता जागने में ही चल सकता है। पागल को यह भी पता नहीं चलता कि मैं पागल हूँ, यह भी गैर-पागल को ही पता चल सकता है। नींद में आपको कभी पता नहीं लगता कि आप सोये हैं, जागकर आपको पता चलता है कि मैं सोया हुआ था। सोये हुए का अनुभव भी जागने का अनुभव है, नींद का अनुभव नहीं है। इसलिए मैं आशा नहीं करता कि आपको पता चला होगा, कि आप सोये हुए हैं। लेकिन जो जाग गये हैं वे कहते हैं कि आप सोये हुए हैं। थोड़ी-सी बातें की जा सकती हैं जिनसे शायद आपको ख्याल आ जाय।

एक आदमी क्रोध करता है, गालियाँ बकता है, साँझ को क्षमा माँगने आता है और कहता है माफ करें। जो मैं नहीं कहना चाहता था वह कह गया, इन-स्पाइट ऑफ मी! वह कहता है मेरे बावजूद! मैं नहीं चाहता था, और बातें हो गयीं, माफ करें। क्या उस आदमी से पूछा जा सकता है कि तुम नहीं चाहते थे तो बातें कैसे हो गयीं? क्या तुम जागे हुए थे या सोये हुए थे?

क्या आपने क्रोध करके हर बार यह अनुभव नहीं किया है कि कुछ जो नहीं करता था वह आपने कर लिया ? अगर ऐसा अनुभव किया है तो इसका मतलब है कि जो किया गया वह नींद में किया गया होगा, अन्यथा यह बात उसी वक्त पता चल सकता था कि जो नहीं करना है वह हम कर रहे हैं।

स्वामी आनन्द एक रात मेरे साथ रुके थे, तो उन्होंने एक संस्मरण मुझे सुनाया। उन्होंने कहा कि यह था गांधीजी के बिलकुल प्राथमिक जीवन का वाकया जब वे हिन्दुस्तान आये हुए थे और किसी सभा में उन्होंने अंग्रेजों के लिए अपशब्द बोले और गालियाँ दी थीं। स्वामी आनन्द ने, उन्होंने जो बोला था, उसको पत्रों में रिपोर्ट की, अखबारों में खबर भेजी, लेकिन स्वामी आनन्द ने वे शब्द निकाल दिये जो गांधीजी ने उपयोग किये थे। क्योंकि वे कठोर थे, कटु थे, गालियाँ थीं, अपशब्द थे, वे अलग कर दिये। और फिर दूसरे दिन स्वामी आनन्द गांधीजी के पास वह रिपोर्ट लेकर गये और कहा मैंने उतनी चीजें अलग कर दीं। तो गांधीजी ने उनकी पीठ ठोंकी और कहा बहुत ठीक किया जो अलग कर दिया, क्योंकि जो मुझे नहीं कहना चाहिए था वह मैंने कह दिया। स्वामी आनन्द मुझसे बोले कि गांधीजी ने मेरी पीठ ठोकी और कहा तुम ठीक पत्रकार हो। मैंने स्वामी आनन्द से कहा, आपने गांधीजी के अहंकार की तृप्ति की और गांधीजी ने आपके अहंकार की तृप्ति कर दी। एक दूसरे की पीठ ठोक दी गयी। मैंने पूछा, एक दूसरा प्रयोग कभी किया कि नहीं ? गांधीजी ने गालियाँ न दी हों और आप अखबार में जोड़ कर लिख दें कि गालियाँ दीं। फिर वे पीठ ठोकते तो पता चलता ! हालाँ कि दोनों बातें एक थीं।

रिपोर्टिंग झूठी थी। स्वामी आनन्द ने जो रिपोर्टिंग की वह झूठ है। गालियाँ अगर दी गयी थीं तो उन्हें रिपोर्ट किया जाना चाहिए, लेकिन गांधीजी ने कहा अच्छा किया तुमने वह निकाल दिया, क्योंकि जो मुझ नहीं कहना चाहिए था वह मैंने कहा था। अगर जो नहीं कहना चाहिए था वह कहा था तो गांधीजी उस वक्त होश में थे, या बेहोश थे ?

हम पश्चाताप इसलिए करते हैं कि हम बेहोशी में कुछ कर जाते हैं और फिर जब थोड़ा-सा होश का क्षण आता है तो फिर पछताते हैं। होश में जीने वाले आदमी की जिन्दगी में पश्चाताप नहीं होता, क्योंकि वह जो कर रहा है वह पूरी तरह जान कर कर रहा है। पश्चाताप का कोई कारण ही नहीं है।

क्या आपकी जिन्दगी में ऐसे मौके नहीं आये हैं कि जब आप पछताये हैं ? पछताते हैं, तो समझ लेना आप सोये हुए आदमी हैं। जो आप करते हैं क्या उसके करने का पूरा कारण आपके होश में होता है ? आप किसी के प्रेम में पड़ जाते हैं, अंग्रेजी में अच्छा शब्द है, हम कहते हैं फालिंग इन लव ! शब्द उपयोग

करते हैं फालिंग; शब्द उपयोग करते हैं, प्रेम में गिर जाना। प्रेम में उठ जाना होना चाहिए। राइजिंग इन लव ! लेकिन प्रेम में लोग गिरते हैं। उसका कारण है। शब्द ठीक है। शब्द इसलिए ठीक है कि प्रेम हम करीब-करीब सोयी हुई हालत में करते हैं। मूर्छित हो जाते हैं। इसलिए अक्सर प्रेमी कहते हैं कि यह प्रेम मैंने नहीं किया, हो गया ! हो गया का क्या मतलब है ? चीजें नींद में होती हैं। जागने में की जाती हैं। आपने प्रेम किया है, या हो गया है ? अगर हो गया है तो आप बेहोश आदमी हैं, सोये हुए आदमी हैं। आपका प्रेम आपका नहीं है, किसी अचेतन मार्ग से आया है। जब आप क्रोध करते हैं तो आप कहते हैं कि यह हो जाता है ? अगर करते हैं तब तो ठीक, लेकिन अगर हो जाता है तो फिर आप जागे हुए आदमी नहीं, सोये हुए आदमी हैं।

हम जो कर रहे हैं, उसके हम कर्ता हैं या यह सब हम पर घटित हो रहा है ? एक पंखे का बटन हम दबाते हैं, पंखा चलता है। अगर पंखा दूसरे पंखों से कहता होगा तो यह नहीं कह सकता कि मैं चलता हूँ। वह इतना ही कह सकता है, चलना मुझ पर घटित होता है।

हम मशीन हैं कि मनुष्य ? हम पर चीजें घट रही हैं, या सचेतन रूप से हम उन्हें कर रहे हैं ? नहीं, हम कर नहीं रहे, यही हमारा प्रमाद है।

बुद्ध साधक अवस्था के पहले एक गाँव से गुजरते थे। रास्ते पर थे। किसी भिक्षुक के साथ बात कर रहे थे और एक मक्खी उनके गाल पर आकर बैठ गयी। बातचीत जारी रखी और मक्खी को उड़ा दिया। जैसा हम सबने उड़ाया होगा। बातचीत जारी रखी, मक्खी को उड़ा दिया। लेकिन फिर तत्काल ठहर गये और आँख बन्द कर ली। मक्खी तो उड़ गई थी पर वह जो भिक्षु साथ था उन्हें उस अवस्था में देख कर बहुत हैरान हुआ। बुद्ध उस जगह हाथ ले गये जहाँ मक्खी बैठी थी, और मक्खी को फिर से उड़ाया।—उस मक्खी को, जो अब वहाँ नहीं थी। उस भिक्षु ने पूछा, आप क्या कर रहे हैं ? मक्खी तो अब नहीं है। बुद्ध ने कहा, अब मैं उस तरह उड़ा रहा हूँ जैसा मुझे उड़ाना चाहिए था ! मैंने बेहोशी में मक्खी उड़ा दी। मैं तुमसे बात करता रहा, हाथ ने यंत्रवत मक्खी को उड़ा दिया। मैं पूरे होश में न था, मक्खी के साथ दुर्व्यवहार हो गया ! उड़ा दिया तब मुझे पता चला कि मैंने उड़ा दिया। जब मैं उड़ा रहा था तब मुझे पता ही नहीं था कि मैं उड़ा रहा हूँ। तो बुद्ध ने कहा—'अब मैं उस तरह उड़ा रहा हूँ जैसे मुझे उड़ाना चाहिए था।' होशपूर्वक, कॉन्सीयसली।

हम सब सोने हुए लोग हैं। हम जो भी कर रहे हैं वह सोये हुए कर रहे हैं। प्रेम, घृणा, दोस्ती, दुश्मनी, क्रोध, क्षमा, प्रायश्चित, सब सोये हुए हो रहा है।

अगर हम अपनी जिन्दगी का पूरा हिसाब लगायें तो वह हमें स्वप्न जैसी मालूम पड़ेगी। जिन्दगी जैसी नहीं मालूम पड़ेगी। अगर आप लौट कर पीछे की तरफ देखें जितनी जिन्दगी आपकी गुजर गयी तो वह ऐसी नहीं लगेगी कि आप जिये, वह ऐसी लगेगी जैसे आपको जिया गया। यू हैव बीन लिव्ड। कुछ आपके ऊपर से गुजरता गया है। इस अवस्था का नाम प्रमाद है। रात की नींद की बात नहीं कर रहा हूँ, दिन की नींद की बात कर रहा हूँ, जब कि हम जागे हुए भी सोये हुए हैं। चौबीस घंटे हम सोये हुए हैं। कभी-कभी किसी खतरे के क्षण में थोड़ी देर को जागरण आता है, अन्यथा नहीं।

अगर मैं एक छुरा अचानक आपकी छाती पर रख दूँ तो एक क्षण को आप जाग जायेंगे। उस क्षण में आप सोये हुए नहीं होंगे। इमर्जन्सी, संकट का क्षण होगा वह। उस वक्त सोये रहना खतरनाक है। अगर अचानक छाती पर कोई छुरा रख दे तो एक क्षण को कोई चीज आपके भीतर, जो सोयी थी, एकदम जागेगी। तब आप भी न रह जाओगे, छुरा रखने वाला भी न रह जायेगा सिर्फ चेतना रह जायेगी जो छुरे को रखने को जान रही है। लेकिन यह ज्यादा देर नहीं चलेगा, यह बहुत क्षणिक होगा। तत्काल भय पकड़ लेगा, भागने लगेंगे, खुद खो जायेगा, फिर आप सो जायेंगे।

कभी किसी खतरे के क्षण में, एकाध क्षण को हम जागते हैं। अगर आम आदमी की जिन्दगी में जागने के क्षणों का हिसाब लगाया जाय तो अस्सी वर्ष की उम्र में आठ क्षण भी खोजना कठिन है जब वह जागा हुआ हो। इसलिए हमारे मन में खतरे की भी एक इच्छा पैदा होती है। खतरे में भी थोड़ा रस आने लगता है, क्योंकि खतरे में हम जागते हैं। खतरे की एक अपनी सेन्सीटीविटी है।

एक आदमी जुए पर दाँव लगा देता है। लाख रुपये लगा दिये उसने। अब एक क्षण को वह जागेगा जब तक तय नहीं होगा कि हार गया या जीत गया। क्योंकि इतना संकट का क्षण है। फिर श्वास रुक जायेगी, उसकी चेतना ठहर जायेगी, वह प्रतीक्षा करेगा कि क्या हो रहा है। इतना संकट का क्षण है कि वह सो नहीं सकता। शायद आपको पता नहीं होगा कि जुए का आकर्षण जागने के रस से ही आता है। हम हजार तरह के खतरे चुनते हैं, हजार तरह के जुए चुनते हैं जिनमें हम क्षणभर को जाग पाते हैं। लेकिन वह इतनी क्षणिक घटना है कि हम जाग नहीं पाते हैं। फिर सो जाते हैं। फिर नींद शुरू हो जाती है। इन आकस्मिक उपायों से कोई कभी पूरी तरह जाग नहीं सकता। लेकिन आपको समझाने के लिए म कह रहा हूँ कि आपको प्रमाद की सोयी हुई अवस्था ख्याल में आ जाय। आपको स्मरण आ जाय कि आप सोये हुए आदमी ह और ऐसे काम कर रहे हैं जो

नहीं करना चाहते, इस तरह जी रहे हैं जैसे नहीं जीना चाहते; इस तरह बठ रहे हैं, उठ रहे हैं, जैसे नहीं बैठना-उठना चाहते। इस तरह के आदमी बनने जा रहे हैं जिस तरह के नहीं बनना चाहते।

मार्कट्वेन ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि मैं एक कहानी लिख रहा था और कहानी में मैंने तय किया था कि कौन-कौन पात्र क्या-क्या काम करेगा। लेकिन जब कहानी पूरी हुई तो मैंने देखा कि पात्रों ने वह काम तो किया ही नहीं, पात्रों ने एक दूसरा काम कर डाला। तब मार्कट्वेन ने लिखा, ऐसा लगता है कि मेरे द्वारा पात्र जन्मे जरूर, लेकिन धीरे-धीरे वे स्वतंत्र हो गये। कुछ ऐसे काम करने लगे जो कि मैं नहीं चाहता था। नायक, जो करना चाहता वह न करके कुछ और करने लगे तो अब कहानी लेखक क्या करेगा? मार्कट्वेन समझ नहीं पा रहा। असल में मार्कट्वेन ने जिस वक्त यह चाहा था कि पात्र यह करे, तब मार्कट्वेन ही सोया हुआ था। इसलिए पात्र वही कैसे करे। फिर दूसरा सोया हुआ मार्कट्वेन कुछ और करवा लेगा, तीसरा कुछ और करवा लेगा।

इसलिए कहानी लेखक जो सोचकर कहानी शुरू करता है, वह कहानी कभी पूरी नहीं होती। कहानी कहीं और पूरी होती है। कवि जहाँ से कविता शुरू करता है, कविता वहीं पूरी नहीं होती। कविता कहीं और पूरी होती है। क्योंकि कॉन-सीयस आर्ट अभी तक पैदा ही नहीं हुआ। जिसको सचेतन कला कहें वह अभी पैदा नहीं हो पाई। जिसको ओब्जेक्टीव आर्ट कहें वह अभी पैदा नहीं हो पाया। अभी तो सोये हुए आदमी कविता लिखते हैं। तो शुरू कुछ करते हैं और हो कुछ जाता है। सोये हुए आदमी चित्र बनाते हैं, बनाना कुछ चाहते हैं बन कुछ जाता है। सोये हुए आदमी कहानियाँ लिखते हैं, कुछ लिखना चाहते हैं कुछ लिख जाता है। सोये हुए राजनीतिज्ञ दुनिया चलाते हैं, कुछ करना चाहते हैं, कुछ हो जाता है।

सोये हुए आदमी के साथ भरोसा नहीं है। लेकिन कहानी की बात छोड़ दें। जिन्दगी में आप जो बनना चाहते हैं वह बन पायें? शायद ही दुनिया में एकाध आदमी मिले जो कहे, मैं बन गया जो बनना चाहता था। सब आदमी कुछ बनना चाहते हैं।

पहली बात तो यह साफ नहीं होती कि क्या बनना चाहते हैं। क्योंकि नींद में कैसे साफ हो सकता है? पता ही नहीं चलता। एक धीमी-सी, सोयी-सी आकांक्षा होती है कि मैं यह बनना चाहता हूँ लेकिन कहीं पर बहुत साफ नहीं होता है कि क्या बनना चाहता हूँ। हालाँकि यह जरूर पता चलता रहता है कि मैं वह नहीं बन पा रहा हूँ जो मैं बनना चाहता था। और जिन्दगी जब अंत होती है

तो शायद ही कोई आदमी यह कह सके कि मैं वही बनकर जा रहा हूँ जो मैं बनना चाहता था। नहीं सब आदमी कहीं और पहुँच जाते हैं; जहाँ वे कभी नहीं पहुँचना चाहते थे। कुछ और बन जाते हैं, जो वे कभी बनना नहीं चाहते थे। जिन्दगी कुछ और होती है जैसा कभी नहीं चाहा था उन्होने, कि हो। अगर आप को ऐसा लगे तो समझना कि आप सोये हुए आदमी हैं। मरते वक्त लगे तो फिर बहुत उपाय न रह जायेगा। अभी लगे तो कुछ उपाय हो सकता है। मरते वक्त सभी को लगता है कि जिन्दगी बेकार गयी। जो होना चाहते थे वह नहीं हो पाये। हालाँकि मरता हुआ आदमी भी साफ-साफ नहीं कह सकता कि क्या होना चाहते थे। लेकिन इतना जरूर उसे लगता है कि कुछ चूक गया कहीं, समथिंग मिसिंग। कुछ खो गया।

आपको भी लग रहा होगा। जिसमें भी थोड़ी बुद्धि है उसे लगता है कि कोई चीज मिस हो रही है, खो रही है। कोई चीज नहीं हो पा रही है। वही फ्रस्ट्रेशन है, वही दुःख है, वही चिन्ता है, वही पीड़ा है। आदमी की परेशानी यही है। प्रेम में जो पाना चाहता है, वह पाता है, कि वह नहीं मिल पाया। प्रेम में जो करना चाहता है, पाता है कि वह कर ही नहीं पाया। आप तय करके जाते हैं किसी मित्र के घर कि यह-यह बातें करूँगा। जब आप पहुँचते हैं तो आप पाते हैं कि आप कुछ और बातें कर रहे हैं। पति घर लौटता है तो यह तय करके लौटता है कि आज पत्नी से झगड़ा नहीं करना है। सब बातें तय करके लौटता है कि इस तरह व्यवहार करना, यह कहना, इस तरह प्रेम प्रकट करना है। पत्नी दिन भर में तय करके रखती है कि अब कल वाली साँझ फिर न आ जाय। वह नहीं करना है, जो कल किया था। फिर अचानक जब वह दोनों आमने-सामने आते हैं तब पता चलता है कि फिर कल की साँझ वापस लौट आयी। जो तय किया था वह खो जाता है, जो नहीं तय किया था वह फिर हो जाता है। यह आदमी सोया हुआ आदमी है कि जगा हुआ आदमी है? नहीं, यह हमारी सोयी हुई अवस्था है।

महावीर ने इसे प्रमाद कहा है। प्रमाद अर्थात् सोये हुए होना। यदि यह स्मरण आ जाय कि मैं सोया हूँ तो खोज शुरू हो सकती है। इसलिए अप्रमाद का पहला सूत्र है इस बात की समझ कि मैं सोया हुआ हूँ। वह जो नींद है, उसका पहला बोध। और समझ लें कि जिससे आपको यह पता चल जाय कि आप सोये हुए हैं तो फिर सुबह करीब है। क्योंकि यह पता तभी चल सकता है जब नींद टूटने लगे।

नींद को तोड़ने का पहला सूत्र है नींद को ठीक से पहचान लेना। यह आपसे पहला सूत्र कहता हूँ कि आप सोये हुए आदमी हैं, इसे ठीक से समझ लेना। चाहे

आप दूकान करते हों तो सोये हुए करते हैं, चाहे मन्दिर जाते हों तो सोये हुए जाते हों, चाहे मित्रता करते हों तो सोये हुए, चाहे शत्रुता करते हों तो सोये हुए। नींद हमारी चौबीस घंटे की स्थिति है।

दूसरी बात, यदि सोये हुए का अनुभव हो जाय, पता चल जाय—और धार्मिक आदमी की शुरूआत इसी बात से होती है कि मैं प्रमादी हूँ, इसका उसे अनुभव हो जाय। नहीं, लेकिन कुछ प्रमादी धर्म को भी नींद में साधते रहते हैं। मालाएँ फेरते रहते हैं और झपकियाँ लेते रहते हैं। मंदिर में बैठे रहते हैं और झपकी लेते रहते हैं। व्रत करते रहते हैं और सोये रहते हैं। जैसे वे दूकान करते हैं, वैसे वे व्रत भी कर लेते हैं। सोये-सोये सब चलता रहता है। धर्म सोये-सोये नहीं हो सकता। सोये-सोये सिर्फ अधर्म हो सकता है। इसलिए धर्म के नाम पर भी सिर्फ अधर्म ही होता है। सोया हुआ आदमी धर्म के नाम पर भी अधर्म ही करता है। वह धर्म कर ही नहीं सकता। यह असंभव है। सोये हुए आदमी से धर्म का कोई संबंध ही नहीं हो सकता। नींद धर्म में तो नहीं ले जा सकती, नींद अधर्म में ही ले जाती है।

स्मरण आ जाय कि मैं सोया हुआ हूँ तो क्या किया जाय?

पहला सूत्र सोये हुए होने का स्मरण। दूसरा सूत्र, इस नींद को तोड़ने के लिए क्या किया जाय, कौन-सा उपाय है? और ध्यान रहे, जो आदमी अपनी इस मंजिल की नींद को तोड़ दे, इसके नीचे की मंजिल की सीढ़ियों पर पहुँच जाता है।

अपने आप अगर कोई आदमी चेतन मन में जाग जाय तो अचेतन में उतर जाता है। अचेतन में उतरने का सूत्र चेतन मन में जाग जाना है। जैसे कि हम नींद में जाग जायँ तो जागरण में उतर जाते हैं। चित्त-दशा फौरन बदल जाती है। एक आदमी को नींद में हमने हिला दिया। वह जाग गया तो नींद गयी और जागना शुरू हो गया। दूसरी चित्त-दशा शुरू हो गयी। अगर हम स्वप्न में जाग जायँ तो स्वप्न तत्काल टूट जाता है, और हम स्वप्न के बाहर हो जाते हैं। जिस चित्त की अवस्था में हम जी रहे हैं वह कॉन्सीयस-माइन्ड है हमारा। अगर उसमें हम जाग जायँ तो अचेतन में उतर जाते हैं। अनकॉन्सीयस में उतर जाते हैं।

और इसके पहले कि मैं आपको समझाऊँ कि कैसे जागें, इसके पहले यह भी आपको समझा दूँ कि जितने हम नीचे गहरे उतरते हैं, उतने हम ऊपर भी उठते जाते हैं। जीवन का नियम ऐसा ही है, जैसा वृक्षों का नियम है। जड़ नीचे जाती है, वृक्ष ऊपर जाता है। साधना नीचे जाती है, सिद्धि ऊपर जाती है। जितनी जड़ें नीचे उतरने लगती हैं उतने ही वृक्ष आकाश को छूने ऊपर बढ़ने लगते हैं। आकाश को छूने लगता है वह फूल, जो खिल रहा है आकाश में।

उसका आधार नीचे पाताल में चली गयी जड़ों में होता है। अगर वृक्ष को ऊपर जाना है तो जड़ को नीचे जाना पड़ता है। उल्टा लगेगा, लेकिन ऊपर बढ़ने के लिए सदा नीचे बैठना पड़ता है। साधना नीचे ले जायेगी, सदा गहराइयों में, और सिद्धि सदा ऊपर उपलब्ध होगी, ऊँचाइयों में।

साधना एक डेप्थ है, गहराई है; और सिद्धि एक पीक है, ऊँचाई है। अपने में ही जो नीचे उतरेगा वह अपने में ही ऊपर जाने की उपलब्धि, वह पाता चला जाता है। सीधे ऊपर जाने का उपाय नहीं है। सीधे तो नीचे जाना पड़ेगा। कॉन्सीयस से अनकोन्सीयस में, अनकोन्सीयस से कास्मीक अनकोन्सीयस में। और प्रतिवार जब आप चेतन से अचेतन में जायेंगे तब अचानक आप पायेंगे कि ऊपर का भी एक दरवाजा खुल गया--सुपर कोन्सीयस का, अतिचेतन का दरवाजा खुल गया। जब आप कलेक्टिव अनकोन्सीयस में जायेंगे तो पायेंगे, ऊपर का एक दरवाजा और खुल गया--वह जो समष्टिगत चेतन है, उसका दरवाजा खुल गया। जब आप कास्मीक अनकोन्सीयस में जायेंगे, ब्रह्म अचेतन में जायेंगे तब अचानक आप पायेंगे कि ब्रह्म-चेतन का, कास्मीक-कोन्सीयस का दरवाजा भी खुल गया। जितने आप गहरे उतरते हैं उतने आप ऊँचे उठते जाते हैं। इसलिए ऊँचाई की फिक्र छोड़ दें, गहराई की फिक्र करें। जिस जगह हम हैं वहाँ से हम कैसे जायें।

अगर कोई आदमी पूछे कि हम तैरना कैसे सीखें? तो उसे हम क्या कहेंगे? उसे हम कहेंगे तैरना शुरू करो। वह कहेगा अभी मैं तैरना जानता ही नहीं तो शुरू कैसे करूँ, कैसे कर सकता हूँ। तब एक बड़ी उलझन पैदा होती है।

अगर मैं आपको नदी के किनारे ले जाऊँ और कहूँ कि मैं आपको तैरना सिखाता हूँ तो आप कहेंगे मैं तब तक पानी में नहीं उतरूँगा जब तक मैं तैरना न सीख लूँ। और आपका तर्क सही होगा। सभी सही दिखाई देने वाले तर्क जरूरी रूप से सत्य के निकट ले जाने वाले नहीं होते। आपका तर्क बिलकुल सही है कि जब तक मैं तैरना न सीख लूँ, मैं पानी में कैसे उतरूँ। पहले मुझे तैरना सिखा दो, फिर मैं पानी में उतर जाऊँगा। यह बिलकुल तर्कयुक्त, लॉजीकल दिखाई पड़ता है। लेकिन मैं आपसे कहूँगा कि जब तक आप पानी में न उतरें तब तक तैरना कैसे सीख सकते हैं? जब आप पानी में उतरोगे तभी तैरना सीख सकते हो। अगर पानी में उतरने को राजी न हो तो तैरना सिखाया नहीं जा सकता। मेरा तर्क भी तर्क है, पूरी तरह सही है। दोनों तर्कयुक्त बातें हैं। लेकिन मेरा तर्क अस्तित्व के निकट है, आपका तर्क सिर्फ विचार का तर्क है। आप विचार में बिलकुल ठीक कह रहे हैं कि बिना तैरना सीखे मैं पानी में कैसे उतरूँ। लेकिन आपको कुछ पता नहीं है कि तैरना सीखने के लिए भी पानी में उतरना पड़ता है।

और पहली बार जब कोई पानी में उतरता है तो बिना तैरना सीखे ही उतरता है। असल में बिना सीखे तैरने के लिए उतर जाने से ही सीखने की शुरुआत होती है। हाँ, इतना है कि बहुत गहरे पानी में मत उतरें, उथले पानी में उतरें, इतने पानी में उतरें कि डूब भी न जायें और इतने पानी में उतरें कि तैर भी सकें। यहीं से शुरुआत करनी पड़ेगी।

तो आपसे मैं परम-जागरण की आकांक्षा नहीं रखता हूँ। थोड़े से पानी में उतरना शुरू करें। जहाँ आप सोये हुए हैं उन छोटी-छोटी क्रियाओं को जानना शुरू करें। रास्ते पर चल रहे हैं, जाग कर चल रहे हैं, सो कर भी चल सकते हैं। अधिक लोग सोये हुए चलते हैं। अगर आप किनारे खड़े होकर रास्ते पर चलते लोगों को देखें तो अनेक उनमें से अपने से ही बातचीत करते हुए जाते हुए मालूम पड़ेंगे। कोई हाथ हिला रहा है, किसी को जवाब दे रहा है जो नहीं है; किसी के होंठ कँप रहे हैं, वह किसी से बात कर रहा है जो नहीं है। यह आदमी नींद में है। अगर आप सड़क के किनारे खड़े होकर घंटे भर सड़क पर चलते हुए लोगों को देखें तो आप हैरान हो जायेंगे कि इतने लोग सोये हुए चल कैसे रहे हैं? चलना सिर्फ हैबिट से हो रहा है। चलने के लिए जागने की बहुत जरूरत नहीं है। कभी-कभी कोई हॉर्न बजा देता है तो आदमी चौंक कर हट जाता है। जरा-सा जागता है, बाकी सोता हुआ चलता रहता है।

आप अपने घर पर जाकर नहीं पहुँचते। आपके पैर बिलकुल मशीन की भाँति अपने घर की तरफ मुड़ जाते हैं। आप अपना दरवाजा बंद पाते हैं, घंटी दबा देते हैं। इसमें जागने की जरूरत नहीं होती। यह सब नींद में होता है, यह सब हैबिट से होता है। हैबीच्युअल है, यह आदत है। साइकिल का हैण्डल अपने आप घूम जाता है ठीक जगह पर। यह सब यंत्रवत् हो रहा है और आप भीतर सोये हुए रहते हैं। इसलिए हमें आदतों को दोहराने में आसानी पड़ती है, क्योंकि उनमें जागना नहीं पड़ता। नयी आदतें बनाने में कठिनाई होती है, क्योंकि उनके लिए थोड़ा जागना पड़ेगा। फिर जब बन जायेगी तब आप सो जायेंगे। इसलिए हम पुराने कामों को बार-बार करते चले जाते हैं। क्योंकि वह नींद में चल रहा है सब।

एक आदमी अपनी सिगरेट मुँह में लगा लेता है। माचिस जला कर जला लेता है, पी लेता है, फेंक देता है। कोई नहीं कहेगा कि वह आदमी सोया हुआ है, होता तो हाथ जल जाता। नहीं, फिर भी सोया हुआ है। हाथ जलने के पहले जरा-सा जागेगा कि हाथ न जल जाय, सिगरेट फेंकेगा और वापस सो जायेगा, हैबीच्युअल है। आदत से पता है कि कब सिगरेट जलने के करीब आ गयी हो तो हाथ से फेंक देंगे। यह सब नींद में हो रहा है।

छोटी-छोटी क्रियाओं के प्रति जागना शुरू करना पड़ेगा। पहले उन क्रियाओं से शुरू करें, जो बहुत इनोसेन्ट हैं। जिनमें कोई झगड़ा नहीं है, बहुत निर्दोष है। रास्ते पर चल रहे हैं, खाना खा रहे हैं, कपड़े पहन रहे हैं, इन छोटी क्रियाओं से शुरू करें जिनमें बहुत इनवोलमेन्ट नहीं है। हाँ क्रोध के प्रति जागना जरा गहरे में जाना होगा। यह उथले में है। अभी कपड़ा पहन रहे हैं, जागे हुए पहनें, बहुत हैरान हो जायेंगे। जागे हुए जूते पहनें, बहुत हैरान हो जायेंगे। अजीब लगेगा कि यह कैसी फीलिंग है, यह कैसा अनुभव है, यह तो कभी नहीं हुआ, जूते तो रोज पहनते हैं। अभी मुझे सुनते हैं, सोये हुए सुन सकते हैं, जागे हुए सुन सकते हैं। जब मुझे सुन रहे हों तो सिर्फ मुझे सुनेंगे। लेकिन इसे भी जानते रहें। अगर सिर्फ मुझे सुन रहे हैं और उसको भूल गये जो सुन रहा है तो आप सोये हुए हैं। यह जो तीर है चेतना का डबल ऐरोड होना चाहिए। दोहरे तीर होना चाहिए। एक है मेरी तरफ जो मैं बोल रहा हूँ और एक अपनी तरफ जो सुन रहा हूँ। अगर आपकी चेतना इस समय भी दोनों तरफ हो जाय—सुने भी और यह भी जाने कि सुन रहे हों तो आप फौरन अनुभव करेंगे कि सुनने की क्वालिटी बदल गयी। अभी यहाँ अनुभव करेंगे कि सुनने का गुणधर्म बदल गया, तब विचार न सकेंगे। तब सिर्फ सुन सकेंगे, क्योंकि अगर विचारा तो दूसरा तीर खो जायेगा। वह जो आपकी तरफ जाने वाला तीर है अगर सिर्फ सुन रहे हैं, अगर सिर्फ देख रहे हैं तो आपकी चेतना में अभी परिवर्तन शुरू हो जायेगा, नींद टूटने लगेगी और जागरण की किरण आने लगेगी।

छोटी-छोटी क्रियाओं में जागना शुरू कर दें। फिर उन क्रियाओं में जागें जिनके लिए पछताना पड़ता है, क्रोध के लिए, घृणा के लिए, अभद्रता के लिए, उनके लिए जागना शुरू करें। अगर आप अपने जागने में सुबह से उठ कर साँझ तक जागने का प्रयोग करें तो थोड़े ही दिनों में आप एकदम दूसरे आदमी हो जायेंगे। आपका प्रमाद जागने से टूट जायेगा। और इसका सबूत क्या होगा कि आपका जागने में प्रमाद टूट गया? इसका सबूत यह होगा कि नींद में भी आपका जागरण शुरू हो जायेगा। जिस दिन आपकी जागरण में नींद टूटेगी उसी दिन आप नींद में भी कोन्सीयसली, सचेतन प्रवेश कर सकेंगे।

कितने मजे की बात है हम रोज सोते हैं, सारी रात सोये हैं, लेकिन हमें यह पता नहीं कि नींद क्या है, और कब आती है? आप रोज सोते हैं, कितनी बार सोये हैं; लेकिन आपको पता है नींद कब आती है? और कैसी आती है? और क्या है? कुछ पता नहीं हमको। सिर्फ इतना ही पता है कि कब तक हम जागे थे, बारह बजे रात तक जागे थे। फिर नींद कब आयी, किस क्षण आयी,

कैसे आपके ऊपर छा गयी, कैसे आप उसमें डूब गये, इसका आपको कभी पता चला है? इसका कोई पता नहीं। जिन्दगी भर सोये हैं। साठ साल आदमी जीता है तो बीस साल सोता है। इतनी बड़ी घटना जिसको बीस साल करनी पड़ती है, इसका भी हमें कोई परिचय नहीं होता कि सोने का अर्थ क्या है? यह सोना क्या है? यह नींद क्या है? क्या घटना घटती है मेरे भीतर? मैं, जो जागने में ही जागा हुआ नहीं हूँ, वह नींद में कैसे जागेगा?

पहले जागने में जागना पड़ेगा और जिस दिन आप जाग जायेंगे उस दिन आप बहुत हैरान होंगे। जैसे मैं इस कमरे में बैठा हूँ और अँधेरा घिर जाय तो मुझे दिखाई पड़ता है कि अँधेरा छा रहा है, अँधेरा घना हो गया, अँधेरा पूर्ण हो गया। फिर रोशनी आ जाय तो मुझे दिखाई पड़ता है रोशनी आयी, रोशनी घनी हुई, रोशनी भर गयी, लेकिन मैं दोनों को जानता हूँ। अभी न तो आप जानते हैं कि कब आप सोये, कैसे नींद का अँधेरा आपके ऊपर गिरा और कैसे आप नींद में डूब गये; न आप जानते हैं सुबह नींद कैसे हटी, कैसे समाप्त हुई, कैसे विदा हो गयी? जिस दिन आप जागरण की घड़ियों में जाग जायेंगे और जागने की क्रिया जाग कर करने लगेंगे जैसे खाना होशपूर्वक खायेंगे, कपड़े होशपूर्वक पहनेंगे, रास्ते पर होशपूर्वक चलेंगे।

महावीर से किसी ने पूछा कि हम क्या करें? तो महावीर ने कहा, क्या करते की उतनी फिक्र मत करो, जो करते हो उसे होशपूर्वक करो। क्रोध होशपूर्वक करके देखें, लेकिन बहुत कठिनाई होगी। जरा गहरे में है बात। फिर एक उपाय करें, एक्टिंग करें किसी दिन क्रोध की तब आप उसमें आसानी से जाग सकेंगे।

आज आप घर जायें तो तय करके जायें कि टूट पड़ना है किसी के ऊपर, बिलकुल एक्टिंग। अकारण तो आप आसानी से जाग सकेंगे। तय करके जायें कि कोई कारण नहीं—पत्नी का ऐसे भी कोई कारण नहीं होता, लेकिन तब आप बेहोश होते हैं। तय करके जायें कि पत्नी का कोई कारण नहीं, अकारण टूट पड़ना है और पूरी तरह क्रोध करें तो आप देख पायेंगे क्रोध को! इधर क्रोध चलेगा, इधर भीतर आप देख पायेंगे क्रोध चल रहा है। और अगर एक्टिंग भी होशपूर्वक देख ली, तो दुबारा जो क्रोध होगा वह एक्टिंग हो जायेगी। अगर एक बार हम क्रोध का अभिनय कर सके तो फिर कभी भी क्रोध बिना अभिनय के नहीं होगा। अभिनय ही हो जायेगा। उसके हमसे भीतरी संबंध ही टूट जायेंगे। तो जो चीजें गहरी हैं उनको एक्टिंग से शुरू करें। जो चीजें गहरी हैं उन पर होशपूर्वक अभिनय करें तो आप जाग सकेंगे और अगर जागने के क्षणों में जागना आ जाय तो फिर नींद के क्षणों में जागना शुरू हो जायेगा। जिस दिन आप नींद में जाग जायेंगे, उस दिन

आप अनकोन्सीयस में प्रवेश करेंगे। कृष्ण ने गीता में उसी की बात कही है। योगी रात भी जब सोते हैं तब जागता है। वह दूसरा चरण है नींद में। अगर आप जाग गये तो आप बहुत हैरान हो जायेंगे। इतने हैरान होंगे कि आपकी पूरी जिन्दगी बदल जायेगी। अगर आप रात में नींद में जागे हुए सो सके जो कि मिरे-कल है, एक अद्‌भुत, चमत्कारपूर्ण घटना है—जिस दिन आप सोये और जागे। एक साथ भीतर जागे और बाहर सोये रहे, उस दिन सुबह आप इतने ताजे उठेंगे जैसी ताजगी का आपको कभी भी पता नहीं है। उस ताजगी का शरीर से कोई संबंध नहीं है। उसी ताजगी का बहुत गहरे में आत्मा से संबंध हो जाता है।

जिस दिन आप जागे हुए सो सकेंगे उस दिन आपके स्वप्न तिरोहित होने लगेंगे, क्योंकि आप स्वप्नों के प्रति जाग जायेंगे। ऐसा नहीं है कि बाद में पता चलेगा कि मुझे स्वप्न आया। जब स्वप्न आ रहा है, तभी आप जानेंगे कि स्वप्न आया।

जैसा मैंने आप से कहा कि चेतन मन की क्रियाओं के प्रति जागें तो अचेतन मन में प्रवेश हो जायेगा, फिर अचेतन मन की क्रियाओं के प्रति जागें तो समष्टि अचेतन, कलेक्टिव अनकोन्सीयस में प्रवेश हो जायेगा। अचेतन मन की क्रिया है स्वप्न, स्वप्न के प्रति आप जब जागेंगे, तब आप अचानक पायेंगे एक दरवाजा और खुल गया जो कलेक्टिव अनकोन्सियस का दरवाजा है। वह मेरा अचेतन नहीं है, हम सबका अचेतन है। उस समष्टिगत अचेतन की अपनी क्रियाएँ हैं जिनको धर्मों ने बड़ा महत्त्व दिया है। बड़े अनुभव हैं, उस अचेतन मन के बड़े गहरे अनुभव हैं जिनको उसने आर्च-टाइप कहा है, जिनको उसने कहा है धर्म-प्रतीक। उस गहरे अचेतन में, कहें समष्टि अचेतन में, ही दुनिया की सारी माय-थोलोजी पैदा हुई। सृष्टि का जन्म, प्रलय की संभावना, परमात्मा के रूपरंग, आकार, नाद, वे सब उसीमें पैदा हुए। वे उसीकी क्रियाएँ हैं। तो जो व्यक्ति स्वप्न में जाग जायेगा वह समष्टिगत अचेतन में प्रवेश करेगा और समष्टिगत अचेतन की अपनी क्रियाएँ हैं जिनको लोग धार्मिक अनुभव कहते हैं। वे भी धार्मिक अनुभव नहीं हैं वे भी मानसिक अनुभव हैं समष्टिगत अचेतन के। रंगों का विस्तार, प्रकाशों का उद्‌भव, अभूत-पूर्व सुगन्ध, अभूतपूर्व ध्वनियाँ, वे सब वहाँ पैदा होंगी। सृष्टि के जन्म और मरण को भी वहाँ देखा जा सकता है। उस क्षण को भी देखा जा सकता है जब पृथ्वी पैदा हुई और उस क्षण को भी देखा जा सकता है जब पृथ्वी अस्त हो जायेगी। यहीं से दुनिया की सारी मिथ्स ऑफ क्रियेशन पैदा हुई। इसलिए बड़े मजे की बात है कि दुनिया में सृष्टि के संबंध में जितने भी सिद्धांत पैदा हुए वह सब समान हैं, एक से हैं। चाहे ईसाई हो या मुस-लमान हो, चाहे हिन्दू हो, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। शब्दों के फर्क पड़े। उसी

क्षण में उस चेतना की, उस अवस्था में ही बहुत-सी बातें जानी गयीं जो सारी दुनिया में समान हैं।

जैसे सारी दुनिया में यह ख्याल है कि कभी कोई महाप्रलय आया। ईसाइयों को भी ख्याल है कि कभी कोई एक महाप्रलय हुआ। सारे जगत् के आदिवासियों के पास भी जो कथाएँ हैं उनका भी ख्याल है कभी कोई महाप्रलय हुआ। बड़े मजे की बात है इन सबके बीच कोई कम्युनीकेशन नहीं रहा। इनके बीच कोई संवाद नहीं रहा। यह संवाद तो अभी पैदा हुआ। इसकी कथाएँ तो लाखों साल पुरानी हैं जब वे एक दूसरे से बिलकुल असंबंधित थे। तब भी इनकी कथाएँ एक हैं। क्या मामला है? एक ही मामला है इनका। जो कलेक्टिव अनको-न्सियस है, वह एक है हम सबका। इसलिए बहुत गहरे में हम सब एक हैं। इसलिए जो चीजें बहुत गहरे में संबंधित हैं उनमें बहुत फर्क नहीं पड़ता।

जैसे नृत्य कलेक्टिव अनकोन्सीयस से पैदा होता है इसलिए नृत्य को समझने के लिए दूसरे की भाषा जाननी जरूरी नहीं। एक अंग्रेज नाचता हो तो एक चीनी समझ सकता है। अंग्रेजी समझना जरूरी नहीं। एक हिन्दू नाचता हो तो मुसलमान समझ सकता है।

चित्र है, पेंटिंग है, पेंटिंग के लिए कोई जरूरत नहीं है, किसी की भी भाषा सम-झने की जरूरत नहीं है। पिकासो की पेंटिंग, जो आदमी फ्रेंच नहीं जानता है वह समझ सकता है। क्योंकि यह सब हमारे कलेक्टिव अनकोन्सियस से पैदा होने वाली चीज है। यह हम सब जानते ही हैं। इसके लिए एक दूसरे की भाषा, एक दूसरे की संस्कृति, एक दूसरे की सभ्यता, एक-दूसरे के सिद्धांतों से परिचित होने की कोई जरूरत नहीं।

इसलिए दुनिया के सारे धर्मों का जो प्रतीक है वह सब समान है कई बात में; इतनी हैरानी की समानता है कि कहना मुश्किल है। जैसे ॐ की ध्वनि है वह कलेक्टिव अनकोन्सीयस से पैदा होती है। इसलिए ॐ की ध्वनि सारी दुनिया के धर्मों में है सिर्फ थोड़े बहुत हेर-फेर हैं, वह समझने के हेर-फेर हैं। हिन्दुओं ने उसे पकड़ा है 'ॐ' की तरह। यह हमारे पकड़ने की बात है क्योंकि पकड़ेगा तो हमारा चेतन मन। तो हमने 'ॐ' की तरह पकड़ा है। यहूदियों ने, ईसाइयों ने, 'आमीन' की तरह पकड़ा है। वह ॐ का ही उनका रूपांतरण है। इसलिए आज भी प्रार्थना के बाद वह कहेंगे आमीन। वह आमीन; ॐ, निर्मित हुआ है। अंग्रेजी के शब्द हैं, ओमनीसायन्ट, ओमनीप्रजेन्ट, वह सब ॐ से बने हुए हैं। लेकिन वह निकले ह बहुत गहरे से। संस्कृत से नहीं निकले। जैसा कि संस्कृति के ज्ञाताओं को ख्याल होता है कि दुनिया की सारी भाषाएँ संस्कृत से पैदा हो

गयीं। ऐसा नहीं है। दुनिया की भाषा में जो समानता है वह कलेकटीव अनकोन्सीयस की समानता है, क्योंकि भाषाएँ किसी एक भाषा से पैदा नहीं हो गयीं।

हमारा एक तल है मन का जो हम सबका इकट्ठा है, जैसे सागर के ऊपर लहरें अलग-अलग हैं; लेकिन नीचे सागर इकट्ठा है। ऐसे लहरों की तरह हम अलग-अलग हैं, लेकिन और गहरे, और गहरे सब इकट्ठा है। वह जो इकट्ठापन है उसकी अपनी क्रियाएँ हैं, जिसको कबीर ने अनाहत नाद कहा है। हम इस तरह का नाद जानते हैं, चोट से पैदा होने वाला नाद। अगर मैं ताली बजाऊँ तो एक नाद पैदा होगा, लेकिन दो तालियाँ टकरायेंगी तब। अगर मैं तबले पर चोट मारूँ तो आवाज गूंजेगी, लेकिन चोट मारूँगा तब। इसको कहेंगे आहत नाद। चोट से पैदा हुआ, आहत, चोट खाके पैदा हुई ध्वनि। कलेकटीव अनकोन्सीयस में ऐसी ध्वनियाँ हैं जो चोट नहीं होतीं और ध्वनियाँ हैं। इसलिए उसको अनाहत नाद कहा है। बिना चोट किये पैदा हुई ध्वनियाँ, एक हाथ से बजाई गयी ताली।

झेन फकीर जापान में अपने साधक से कहता है एक हाथ से ताली बजाई जाय तो कैसे बजेगी? इसका पता लगाकर आओ। बड़ा मुश्किल है। एक हाथ से ताली कहीं बज सकती है? एक हाथ से ताली कैसे बज सकती है? कभी वह टेबल पर बजाता है, कभी दीवाल पर बजाता है। और गुरु को आकर कहता है मैंने बजाई एक हाथ की ताली। और दीवाल पर बजा कर कहता है। गुरु कहता है दीवाल दूसरा हाथ बन गयी, नहीं चलेगी। एक हाथ से ताली कैसे बजाई जाती है उसका पता लगाकर आओ। वह तब तक पता नहीं लगा सकता जब तक वह अनाहत नाद में न उतर जाय। वह उसी में उतरने के लिए कह रहा है। एक हाथ की ताली कैसे बजती है, उसको खोजो।

कलेक्टीव-अनकोन्सीयस की जो क्रियाएँ हैं अगर हम उनके प्रति जाग जायें तो हम कास्मीक अनकोन्सीयस में उतर जाते हैं। तब हम ब्रह्म-अचेतन में उतर जाते हैं, जिसको इस मुल्क में प्रकृति कहा गया है। प्रकृति शब्द को समझ लेना उचित होगा। प्रकृति का मतलब होता है, जब सब बना उसके पहले भी जो था। कृति के भी जो पहले है। प्रीक्रीयेशन, अगर अंग्रेजी में बनेगा। शब्द तो बनेगा प्रीक्रीयेशन। सृष्टि से भी पहले जो है। जिससे सब पैदा हुआ। जो पैदा होने के पहले भी था उसको कहते हैं प्रकृति! वह जो कॉस्मीक अनकोन्सीयस है, वह प्रकृति है। उससे ही सब आया।

अब इसको ऐसा समझ लें। चेतन मन मेरा है, अचेतन मन भी मेरा है, लेकिन कलेक्टीव-अनकोन्सीयस 'हमारा' है, वह 'मेरा' नहीं है। वह आपका नहीं है, वह हमारा है। कॉस्मीक अनक्रोन्सीयस हमारा भी नहीं है, सबका है।

उसमें पत्थर भी सम्मिलित है। पक्षी भी सम्मिलित हैं। नदी भी सम्मिलित है। पहाड़ भी सम्मिलित है। वह प्रकृति है। वहाँ जो उतर जाये उसके आगे उतरने को नहीं रहता। वह बॉटमलेस है। उसके नीचे उतरने का कोई उपाय नहीं, वह शून्य खाई है। इसमें उतरने की प्रक्रिया, अप्रमाद है। जहाँ आप हैं वहीं जागना शुरू करें। जिस दिन आप वहाँ जाग जायेंगे, आपको नीचे के दरवाजे की कुंजी मिल जायेगी। फिर वहाँ जागना शुरू करें और नीचे की कुंजी मिल जायेगी। और एक दूसरी प्रक्रिया पूरे समय साथ चलेगी। जब तक आप चेतन में हैं, तब तक आप सुपर-कोन्सीयस, अति-चेतन में नहीं जा सकते, ऊपर नहीं बढ़ सकते। आपकी जड़ों को अनकोन्सीयस में उतरना पड़ेगा। जिस दिन आपकी जड़ें अचेतन में उतर जायेंगी उसी दिन आपकी शाखाएँ सुपर-कोन्सीयस में फैल जायेंगी। ऊपर उठ जायेंगी।

फ्राइड और जुंग, सूपर-कोन्सीयस में नहीं पहुँच पाते, क्योंकि वे अनुमान कर रहे हैं। इसलिए वे अनकोन्सीयस कलेक्टिव-अनकोन्सीयस, इनकी तो बात करते हैं, नीचे की। लेकिन ऊपर की उनके पास कोई कल्पना नहीं है। लेकिन यह जगत् सदा एक संतुलन है। यहाँ जितने नीचे जाने का उपाय है, उतने ही ऊपर जाने का उपाय है। असल में नीचे का अस्तित्व ही नहीं हो सकता, अगर ऊपर का अस्तित्व न हो। ऊपर का और नीचे का अस्तित्व एक साथ ही हो सकता है। अगर बायाँ न हो तो दायाँ नहीं हो सकता है कि हो सकता है? अगर दायाँ है तो बायाँ का अस्तित्व जरूर होगा, चाहे पता हो या न हो। क्या नीचे का अस्तित्व हो सकता है ऊपर के बिना? फिर उसे नीचे कैसे कहियेगा? नीचे का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता ऊपर के बिना। क्या दुःख का अस्तित्व हो सकता है सुख के बिना? तो फिर उसे दुःख कैसे कहियेगा? दुःख का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता सुख के बिना।

जिन्दगी सदा दोहरी है। जितना ऊपर है, उतना नीचे है। जो भी नीचे है वही ऊपर भी है। फर्क इतना ही है, नीचे अन्डर-ग्राउंड है, अंधेरे में है; ऊपर खुले आकाश में, सूरज की रोशनी में है। जितना नीचे उतरोगे उतना ही अँधेरा बढ़ता चला जायेगा और कॉस्मिक अनकोन्सीयस में, प्रकृति में, पूर्ण अंधकार है, विराट् अंधकार है, अंधकार ही अंधकार है। जितना ऊपर बढ़ियेगा उतना ही प्रकाश बढ़ता जायेगा और वह जो कॉस्मिक-कोन्सीयस है, ब्रह्म है, वह पूर्ण प्रकाश है। प्रकाश ही प्रकाश है, लेकिन ऊपर जाने का रास्ता नीचे होकर जाता है। वह जो नीचे खाई है उसके द्वारा चोटी पर पहुँचा जाता है। यही सबसे बड़ी साधना की कठिनाई है। यही समझना सबसे ज्यादा कठिन हो जाता है कि ऊपर जाने के लिए नीचे जाना पड़ेगा।

हम सोचते हैं सीधे ऊपर चले जायें, लेकिन सीधे हम ऊपर नहीं जा सकते। अगर हम सीधे ऊपर जायेंगे स्पेकुलेशन शुरू हो जायेगा। फिर हम ऊपर का दर्शन बना लेंगे। सुपर-कोन्सीयस, कलेक्टिव-कोन्सीयस, कॉस्मिक-कोन्सीयस, इसके हम सिद्धांत बना सकते हैं। लेकिन यह सिद्धांत सिर्फ सिद्धांत होंगे वैचारिक। जो सीधा ऊपर जायेगा वह फिलसफी में चला जायेगा। दर्शन में चला जायेगा। धर्म में नहीं जा सकेगा। जिसे धर्म के अनुभव में जाना है उसे पहले नीचे उतरना पड़ेगा। बड़े मजे की बात है, जिसे संत होना हो उसे बहुत गहरे अर्थों में पापी होना पड़ता है। और जो व्यक्ति गहरे अर्थों में पापी होने से बच गया, वह गहरे अर्थों में संत नहीं हो सकता। लगती है यह बहुत अजीब-सी बात, लेकिन यह तथ्य है। इसका कोई उपाय नहीं। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि बड़े पापी एकदम से बड़े संत हो जाते हैं। और छोटे पापी छोटे ही पापी बने रहते हैं, क्योंकि जो भी जगत् में ट्रान्सफारमेशन, रूपांतरण हैं वे सदा गहराइयों से ही आते हैं। नीचे उतरना जरूरी है ऊपर जाने के लिए।

नीत्से का एक वचन आपसे कहूँ। नीत्से ने कहा है कि जिस वृक्ष को आकाश छूना है उस वृक्ष को अपनी जड़ें पाताल तक पहुँचाने की हिम्मत जुटानी पड़ती है। बहुत घबड़ाने वाली बात है नीचे उतरना, क्योंकि वहाँ अंधकार है। जब आप चेतन से अचेतन में उतरेंगे तो बहुत अंधकार में उतर जायेंगे। लेकिन जितने अंधकार में उतरने की आप हिम्मत जुटाते हैं, उतने प्रकाश के अधिकारी और पात्र हो जाते हैं। पात्रता आती है अँधेरे में उतरने से। साहस आता है अँधेरे में उतरने से। योग्यता आती है अँधेरे में उतरने से।

इसलिए ऊपर की फिक्र छोड़ दें, नीचे की फिक्र करें और एक-एक कदम पर प्रमाद को तोड़ते चले जायँ। कहाँ से शुरू करेंगे? शुरू सदा वहीं से करना पड़ता है, जहाँ आप हैं। आप जिस मंजिल में हैं उस मंजिल का नाम चेतन है। उस चेतन मंजिल की क्रियाओं का आप प्रमाद छोड़कर आप करना शुरू कर दें।

बुद्ध के पास आनन्द वर्षों तक रहा। एक दिन उसने पूछा कि बड़ी मुसीबत मालूम पड़ती है। कभी-कभी रात को मुझे नींद नहीं आती तो मैं आपको देखता रहता हूँ। आप जिस करवट सोते हैं उसी करवट सोये रहते हैं, हाथ भी नहीं हिलाते, पैर भी नहीं बदलते। जिस आसन में, जिस अवस्था में साँझ सिर रखते हैं वैसा ही रात भर रखे रहते हैं। हैरानी होती है। मुझे तो करवट बदलनी पड़ती है। मुझे तो बहुत हाथ-पैर हिलाने पड़ते हैं। बुद्ध ने कहा, तुझे पता रहता है कि तू हाथ-पैर हिला रहा है, करवट बदल रहा है? आनन्द ने कहा, कुछ पता नहीं चलता। सुबह पता चलता है कि जैसा सोया था वैसा नहीं सोया हूँ।

फिर कहीं का कहीं पहुँच गया। नींद में किसी को पता चल सकता है? बुद्ध ने कहा, मैं जानता हुआ सोता हूँ, मैं जानता हुआ ही सोया रहता हूँ। जहाँ हाथ रखा था वहीं हाथ रहता है, जब तक मैं न हटाऊँ। हाथ अपने से हट जाय तो मेरी मालकियत गयी। फिर मैं मालिक नहीं रहा। तो आनन्द ने कहा, आप रात में भी क्या जागे हुए सोते हैं? बुद्ध ने कहा, निश्चित ही। क्योंकि मैं दिन में जागा हुआ जागता हूँ इसलिए रात में जागे हुए सोने का अधिकारी हो गया हूँ।

जब तक आप दिन में सोये हुए जागेंगे तब तक तो संभावना नहीं है आप जागे हुए सो सकें। जब जागने में सोये रहते हैं तो सोने में तो सोये ही रहेंगे।

जागने में जागना शुरू करना पड़ेगा, वहीं से प्रमाद तोड़ें। महावीर अपने भिक्षुओं से निरंतर कहते थे विवेक से उठो, विवेक से चलो, विवेक से बैठो। इसका मतलब क्या था? शायद, उनके अनेक साधु यह समझते हैं कि विवेक से उठने का मतलब, विवेक से बैठने का मतलब जो महावीर के साधुओं ने समझा है वह महावीर का ख्याल नहीं है। महावीर के साधु समझते हैं 'विवेक से चलो' इसका मतलब है कि किसी के बिछाये हुए बिस्तर पर पैर मत रखना, किसी के बिछाये हुए गलीचे पर मत चलना, सूखी जमीन में चलना, गीली जमीन में मत चलना। विवेक से खाओ, तो साधु महावीर का, हजारों साल से समझ रहा है कि यह खाना और यह न खाना। विवेक का मतलब लोगों ने समझा है, डिस्क्रिमिनेशन। विवेक का यह मतलब नहीं है महावीर का।

महावीर का विवेक से मतलब है 'होश'। महावीर का विवेक से मतलब है, अवेयरनेस, डिस्क्रिमिनेशन नहीं। क्योंकि जहाँ अवेयरनेस है वहाँ तो डिस्क्रिमिनेशन अपने-आप आ जाता है छाया की तरह। लेकिन जहाँ डिस्क्रिमिनेशन है वहाँ अवेयरनेस आना कोई जरूरी नहीं।

महावीर कहते हैं विवेक से चलो। उसका मतलब है जानते हुए चलो, होश से चलो कि तुम चल रहे हो। अब इस होश में सब आ जायेगा। जो गलत होगा वह नहीं होगा, क्योंकि होशपूर्वक किसी ने कभी कोई गलत काम नहीं किया, कर नहीं सकता। होशपूर्वक जो भी किया जाता है वह सदा ठीक है। होशपूर्वक पुण्य ही किया जा सकता है, होशपूर्वक पाप नहीं किया जा सकता। इसलिए महावीर जब कहते हैं होशपूर्वक खाओ तो उसका मतलब यह नहीं कि यह खाओ और यह मत खाओ। उसका मतलब है होशपूर्वक खाओ। खाने की क्रिया होशपूर्वक हो। उसमें यह तो आ ही जाता है—क्या छोड़ो क्या न छोड़ो। वह छूट ही जायेगा। उसे छोड़ने के लिए अलग से व्यवस्था बनाने की जरूरत नहीं है और जो आदमी अलग से नियम बनाता है, वह बना रहा है। उसका होश अभी नहीं जगा।

मैं जाकर कसम खाता हूँ मंदिर में कि मैं दरवाजे से ही निकलूँगा, कभी दीवाल से नहीं निकलूँगा। तो लोग कहेंगे आप अंधे तो नहीं हैं, क्योंकि यह कसम सिर्फ अंधे ही खा सकते हैं। और ध्यान रहे, अंधा कितनी ही कसम खाये कभी-न-कभी दीवाल से टकरायेगा ही। अंधे के बस के बाहर है कसम को पूरा करना। और आँख वाला आदमी कभी कसम नहीं खाता कि मैं दरवाजे से निकलूँगा दीवाल से न निकलूँगा। आँख वाला आदमी दरवाजे से निकलता है और दीवाल से नहीं निकलता, क्योंकि आँख होने का मतलब यह है कि वह बताती है कि दीवाल से सिर टूट जायेगा और दरवाजे से रास्ता है। दीवाल से रास्ता नहीं है।

जो विवेक से जीता है वह गलती नहीं करता, गलती नहीं करने की कसम कभी नहीं खाता। और जो आदमी गलती को न करने की कसम खाता है वह जान लेता है कि उसे विवेक का अभी कोई पता नहीं चला। वह अंधा आदमी है। व्रत सिर्फ अंधे लेते हैं। आँख वाले लोग व्रत नहीं लेते। आँख वाले लोग जिस ढंग से जीते हैं वह व्रत है! व्रत लिया नहीं जाता। लेकिन हम सब मंदिरों में व्रत ले रहे हैं। हम कसमें खा रहे हैं कि मैं एक साल ऐसा करूँगा, ऐसा नहीं करूँगा, ऐसा नहीं खाऊँगा, ऐसा नहीं पीऊँगा। इसका मतलब यह है कि आपका चित्त तो पीना चाहता है, आपका चित्त तो खाना चाहता है, उस चित्त को रोकने के लिए आप उल्टी कसम खा रहे हैं। मंदिर में खा रहे हैं इसलिए कि भगवान् का थोड़ा डर रहे। लोगों के सामने खा रहे हैं कि लोग जरा देखते रहें कि तुमने कहा था सिगरेट नहीं पीऊँगा, अब तुम पी रहे हो। साधु के सामने कसम खा रहे हैं तो जरा भय रहे कि साधु को वचन दिया है तो पूरा करें। लेकिन एक बात पक्की है कि सिगरेट पीने की इच्छा भीतर मौजूद है। वह आदमी होश में नहीं है, इसलिए वह कसम खा रहा है।

कसम किसके खिलाफ खाई जाती है? अपने खिलाफ! और अपने खिलाफ खाई गयी कसम को पालना बहुत मुश्किल है। और अगर पाल ली गयी तो भी उससे कोई हित नहीं है। सिर्फ व्यक्तित्व की संवेदना क्षीण होती है और कुछ भी नहीं होता।

नहीं, महावीर जब कहते हैं 'विवेक से चलो' तो उसका मतलब है चलने की क्रिया होशपूर्वक हो, अप्रमादी हो। प्रमाद न रहा हो, मूर्छित न हो। पैर उठे तो जानो कि उठा। जमीन पर गिरे तो जानो कि गिरा। सिर घूमे तो जानो कि घूमा। बैठ रहे हो तो जानो कि बैठ रहे हो। कोई भी क्रिया बेहोशी में न हो जाय।

इसलिए महावीर से जब किसी ने पूछा आप साधु किसको कहते हैं तो महा-वीर ने यह नहीं कहा कि जो मुँह पर पट्टी बाँधता है उसको मैं साधु कहता हूँ।

अगर महावीर ऐसा कहते तो दो कौड़ी के आदमी हो जाते! मुँह-पट्टी की जितनी कीमत है उतनी ही कीमत होती महावीर की! ऐसा नहीं कहा कि जो नंगा रहता है उसे मैं साधु कहता हूँ। अगर वह ऐसा कहते तो बड़े ना-समझ सिद्ध होते और जो जानने वाले हैं, वह अनादि-अनंत समय तक उन पर हँसते। नहीं, महावीर ने जो जवाब दिया बहुत अद्भुत था। महावीर ने कहा जो जागा हुआ है उसे मैं साधु कहता हूँ, 'असुता मुनि'। जो सोया हुआ नहीं है, उसे मैं मुनि कहता हूँ। बड़ी अद्भुत परिभाषा महावीर ने दी—जो सोया हुआ नहीं, असुता मुनि, नहीं सोया है जो, उसे मैं साधु कहता हूँ। पूछने वालों ने पूछा कि आप असाधु किसे कहते हैं? महावीर को कहना चाहिए था कि जो शराब पीता है। लेकिन ऐसा लगता है महावीर को शराबखानों से कोई संबंध नहीं था। जिनका होता है वह यही समझाये चले जाते हैं—मांस नहीं खाता है वह साधु, सिगरेट नहीं पीता है वह साधु। यह करता, यह नहीं करता।

महावीर ने कहा, 'सुत्ता-अमुनि', जो सोया हुआ होता है वह असाधु है। बड़ी हिम्मत की। बड़ी गहरी, बड़ी समझ की बात है। सिर्फ एक छोटे से सूत्र पर सब-कुछ निर्भर होता है: आप जाग कर जी रहे हैं या सो कर जी रहे हैं। अगर आप जाग कर जी रहे हैं, आपकी जिन्दगी में साधुता उतर आयेगी। अगर आप सोकर जी रहे हैं, आपकी जिन्दगी में असाधुता के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता। आप सोये-सोये भी साधु बन सकते हैं, वह बना हुआ साधु होगा। और बने हुए साधु, असाधुओं से भी बदतर हालत में हो जाते हैं। क्योंकि उनको यह भ्रम पैदा हो जाता है कि वह साधु हैं और जब असाधु को यह भ्रम पैदा हो जाय कि वह साधु है, तब जनम-जनम लग जायेंगे इस भ्रम से छूटने में।

अप्रमाद साधना का सूत्र है। अप्रमाद साधना है। चार दिन बात मैंने आपसे की। अहिंसा—वह परिणाम है, हिंसा स्थिति है। अपरिग्रह—वह परिणाम है, परिग्रह स्थिति है। अचोरी—वह परिणाम है, चोरी स्थिति है। अकाम—वह परिणाम है, वासना या काम स्थिति है।

इस स्थिति को परिणाम तक बदलने का जो सूत्र है, वह सूत्र है अप्रमाद। अवेयरनेस, रीमेम्बरिंग, स्मरण। प्रत्येक क्रिया स्मरण-पूर्वक हो और प्रत्येक क्रिया होशपूर्वक हो। और एक भी क्रिया ऐसी न हो जो कि बेहोशी में हो रही हो। बस, आपकी धर्म-यात्रा शुरू हो जाती है। आप नीचे उतरने लगेंगे और सूत्र वही रहेगा। जब नीचे के दूसरे खंड में पहुँचेंगे तब उसकी क्रियाओं के प्रति फिर अप्रमाद, जब उसकी पूरी क्रियाओं के प्रति जाग जायेंगे तो और नीचे पहुँचेंगे उसके प्रति अप्रमाद, और जितने नीचे पहुँचेंगे उतने ऊपर पहुँचते चले जायेंगे। जिस दिन

कोई अपने पाताल के आखिरी पर्त को छू लेता है उसी दिन उसे अपने आत्मा की आखिरी, अमृत की पर्त, उसे उपलब्ध हो जाती है।

जायें पाताल में, ताकि पहुँच सकें मोक्ष में! उतरें गहरे, ताकि छू सकें ऊँचाई को! छुएँ नरक को, ताकि उपलब्ध हो सके स्वर्ग! जायें अंधकार में गहरे और गहरे ताकि प्रकाश को पाने की पात्रता मिल सके। अप्रमाद से, अप्रमाद के अतिरिक्त और किसी बात से यह संभव नहीं होता है। दुनिया में कहीं भी कुछ भी कहा गया हो, चाहे जिसने कहा हो, चाहे बुद्ध ने, चाहे महावीर ने, चाहे कृष्ण ने, वह सबका सब, अप्रमाद के जैसे छोटे से शब्द में समा जाता है।

कृष्ण कहते हैं नींद में भी जागो। जीसस कहते हैं जागे रहो। क्योंकि पता नहीं वह कब आ जाय। ऐसा न हो कि तुम सोये रहो और वह आये परमात्मा, और तुम्हें सोया पाये और लौट जाये। जागो और प्रतीक्षा करो। बी अवेर ॲन्ड अवेट। जीसस की सारी बातचीत इसी सूत्र पर घूमती है कि जागो और प्रतीक्षा करो। और महावीर की पूरी जिन्दगी का प्रवचन एक ही बात को बार-बार दोहराता है—होशपूर्वक, विवेकपूर्वक, अप्रमाद से जीओ, मूर्छा में नहीं।

दो-तीन सूत्र और अपनी बात में पूरी करूँ। पहला सूत्र ठीक से समझ लेना कि आप सोये हुए हैं। समझाने की कोशिश अपने को मत करना कि मैं सोया हुआ नहीं हूँ। जस्टीफाई अपने को मत करना कि मैं सोया हुआ नहीं हूँ। मन कहेगा कि क्या मैं और सोया हुआ? दूसरे सोये हुए होंगे, मैं तो जागा हुआ आदमी हूँ। मैं सोया हुआ? शास्त्र पढ़ता हूँ, सोये हुए कैसे पढ़ सकता हूँ? आत्मा, परमात्मा है, ऐसा जानता हूँ, सोये हुए कैसे जान सकता हूँ? नहीं, मैं सोया हुआ नहीं हूँ। दूसरे सोये हुए हैं। सोया हुआ आदमी सदा दूसरे पर टाल के अपने को जागा हुआ मान लेता है। यह निरंतर बचने का उपाय है, यह सेफ्टी-मेजर है नींद, के, और नींद के अपने उपाय हैं बचने के। ध्यान रखना, नींद टूटने से बचना चाहती है। नींद इस तरह का इन्तजाम करती है कि टूट न जाय। अगर आप रात को भूखे सो गये तो नींद भोजन देती है आपको, अपने को बचाने के लिए स्वप्न में। अगर स्वप्न में भोजन न मिले तो नींद टूट जायेगी। तो नींद इन्तजाम करती है कि भोजन ले लो—झूठा सही, क्योंकि नींद झूठी चीज दे सकती है। नींद सच्ची चीज नहीं दे सकती। भूख आदमी को स्वप्न में निमंत्रण दिलवा देती है कि सम्राट् के घर आज भोज है और आपको निमंत्रण मिला है। और जो आदमी ने अपनी जिन्दगी में कभी न खाया वह नींद उसके सामने रख देती है। यह नींद अपनेको बचा रही है। आपको पेशाब लगी है नींद में, तो नींद कहेगी बाथरूम में चले जाओ। नींद में ही चले जाओगे, उठने की कोई जरूरत नहीं। उठने से नींद टूट जायेगी। आपने एलार्म रखा है चार बजे उठने का, अलार्म की घंटी बजती है। नींद कहेगी, एलार्म की घंटी नहीं, मंदिर का घंटा बज रहा है, आराम से सोओ!

नींद अपने सेफ्टीमेजर बना रही है। नींद ने इन्तजाम किया है कि टूट न जाय। तो आपके जागने में भी एक नींद का इन्तजाम है, वह इन्तजाम आपसे कहेगा, तुम तो जागे हुए हो बाकी लोग सोये हुए हैं। तुम इन्हें जगाने की कोशिश करो तो अच्छा, तुम तो जागे हुए ही हो। अगर आपका मन आपसे कहे कि जागे हुए ही हो तो नींद की इस सुरक्षा से बचना! इस धोखे में मत पड़ जाना। जिस दिन पता चल जाय कि मैं सोया हुआ हूँ, एहसास हो जाय। फिर कल की कोई जरूरत नहीं, अभी, यहीं, एहसास हो सकता है कि आप सोये हुए हैं। तो फिर जागने का उपाय शुरू करना। छोटी-छोटी क्रियाओं में जागना और जो गहरी क्रियाएँ हैं उनका अभिनय करके जागने की कोशिश करना।

अगर संकल्प पूर्वक नींद की तरकीबों से बचते हुए जागने का प्रयास किया जाय तो जो महावीर को संभव हुआ, जो बुद्ध को संभव हुआ, वह आपको भी संभव हो सकता है। पोटन्सीयली, बीज रूप से, आपकी वही संभावना है जो किसी की भी है। आप भी वही हो सकते हैं जो जगत् में कोई भी कभी हुआ है।

जागने की कोशिश करना और जागनेकी कोशिश जब गहरी हो जाय तो रुक मत जाना, अन्यथा दूसरे चरण पर नींद पकड़ लेगी। दूसरी मंजिल में ही रह जायेंगे। फिर वहाँ जागने की कोशिश करना। लम्बी है यह यात्रा। असंभव नहीं, कठिन है। और जो करता है वह कर ही पाता है। नीचे-नीचे उतरते जाना, ऊपर की फिक्र छोड़ देना। ऊपर के फल अपने से आने लगेंगे। जितने आप नीचे उतरेंगे, उतने ऊपर फूल खिलने लगेंगे। उसकी सुगन्ध, उसका प्रकाश, उसका आनन्द, झरने लगेगा। जैसे-जैसे नीचे जायेंगे वैसे-वैसे ऊपर जाने लगेंगे। और जिस दिन कोई व्यक्ति अपनी गहराई से गहराई को छू लेता है, दी अल्टीमेट डेप्थ, जिस दिन परम गहराई को छू लेता है, उसी दिन परम ऊँचाई को छू लेता है। और जिस दिन दोनों छू लेता है, उस दिन गहराई और ऊँचाई एक हो जाती है। दो नहीं रह जाती। उस दिन सब एक हो जाता है।

सात मंजिल का यह मकान जिस दिन पूरा जान लिया जाता है, उस दिन एक हो जाता है। उस दिन फिर इसमें सात मंजिलें भी नहीं रह जातीं। सब बीच के परदे गिर जाते हैं। दीवाल हट जाती है। और एक भवन रह जाता है। उस एक का अनुभव ही परमात्मा का अनुभव है! उस एक का अनुभव ही मोक्ष का अनुभव है! उस एक का अनुभव ही अद्वैत का अनुभव है! उस एक का अनुभव ही समाधि का अनुभव है!

इन पाँच दिनों में यह थोड़ी-सी बातें मैंने आपसे कहीं। इसलिए नहीं कि मुझ कहने में कुछ मजा आता है, इसलिए नहीं कि आपको सुनने में थोड़ा मनोरंजन हो, बल्कि इसलिए कि शायद कहीं चोट लग जाय ! वीणा का कोई तार आपके भीतर कँप जाय ! और कोई यात्रा शुरू हो जाय।

अंत में परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने को बिना जाने समाप्त न हो जायँ। आपकी जानने की, आपकी खोजने की, स्वयं से पूरी तरह परिचित होने की, यात्रा शुरू हो। लेकिन अकेली परमात्मा से की गयी प्रार्थना का कोई अर्थ नहीं हो सकता। आप से मैं प्रार्थना करता हूँ कि परमात्मा को थोड़ा सहयोग दें कि आप की यात्रा पूरी हो सके।

●

एक विशेष सूचना

"ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया" दिनांक १ सितम्बर '७० से ५ सितम्बर '७० तक बम्बई में पंचमहाव्रत पर हुए पाँच प्रवचनों का संकलन है। बाद में इन प्रवचनों के आधार पर बम्बई में दिनांक १० नवम्बर '७० से १७ नवम्बर '७० तक आठ प्रवचन-प्रश्नोत्तरों का आयोजन किया गया था। इनमें पंचमहाव्रत पर अनेक प्रश्नों का गहन विवेचन आचार्यश्री ने किया है। वे आठ प्रवचन **"सूली ऊपर सेज पिया की"** शीर्षक से पुस्तकाकार में शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

आचार्य रजनीश-साहित्य

क्र०	पुस्तक	भाषा				मूल्य
		हिंदी	गुज०	मराठी	अंग्रेजी	हिन्दी में
१.	साधना-पथ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	३-००
२.	क्रांति-बीज	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	४-००
३.	सिंहनाद	हाँ	हाँ	हाँ	...	१-२५
४.	मिट्टी के दिये	हाँ	हाँ	...	हाँ	३-५०
५.	पथ के प्रदीप	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	३-५०
६.	मैं कौन हूँ	हाँ	हाँ	...	हाँ	२-००
७.	अज्ञात की ओर	हाँ	हाँ	...	हाँ	२-००
८.	नये संकेत	हाँ	हाँ	...	हाँ	१-७५
९.	संभोग से समाधि की ओर	हाँ	हाँ	...	हाँ	३-५०
१०.	अंतर्यात्रा	हाँ	हाँ	...	निर्माणरत	३-५०
११.	शांति की खोज	हाँ	निर्माणरत		"	२-००
१२.	सत्य की खोज	हाँ	...	...	...	३-००
१३.	अस्वीकृति में उठा हाथ	हाँ	...	...	...	५-००
१४.	प्रभु की पगडंडियाँ	हाँ	...	...	निर्माणरत	४-००
१५.	शून्य की नाव	हाँ	...	...	...	३-००
१६.	सत्य की पहली किरण	हाँ	निर्माणरत		...	६-००
१७.	समाजवाद से सावधान	हाँ	"	...	निर्माणरत	३-५०
१८.	आचार्य रजनीश : समन्वय-विश्लेषण-संसिद्धि	हाँ	[आलोचक डा० रामचंद्र प्रसाद]			७-५०
१९.	अमृत-कण	हाँ	हाँ	हाँ	...	०-६०
२०.	अहिंसा-दर्शन	हाँ	हाँ	...	हाँ	०-५०
२१.	कुछ ज्योतिर्मय क्षण	हाँ	हाँ	...	निर्माणरत	१-००
२२.	नये मनुष्य के जन्म की दिशा	हाँ	हाँ	...	...	०-७५
२३.	सूर्य की ओर उड़ान	हाँ	हाँ	...	...	१-००

क्र०	पुस्तक	भाषा: हिंदी	गुज०	मराठी	अंग्रेजी	मूल्य हिन्दी में
२४.	प्रेम के पंख	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	०–७५
२५.	सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	हाँ	हाँ	...	...	१–५०
२६.	नारगोल : युवक-युवतियों के समक्ष प्रवचन	...	हाँ	...	...	०–२५
२७.	क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार (भारत के साधु-संत)	हाँ	...	...	...	०–३०
२८.	न आँखों देखा, न कानों सुना (गोपनीय गांधी)	हाँ	...	...	...	०–१५
२९.	क्रांति की नयी दिशा, नयी बात (नारी और क्रांति)	हाँ	...	...	...	०–३०
३०.	व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज	हाँ	हाँ	...	...	०–२५
३१.	युवक कौन	हाँ	...	...	...	०–३०
३२.	युवा और यौन	हाँ	...	...	...	०–३०
३३.	बिखरे फूल	हाँ	...	...	...	०–३५
३४.	संस्कृति के निर्माण में सहयोग	हाँ	...	...	...	०–३०
३५.	विवाह और परिवार	हाँ	...	...	...	१–००
३६.	मन के पार	हाँ	...	...	...	१–००
३७.	ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया	हाँ	...	...	...	४–००
३८.	प्रेम के फूल	हाँ	निर्माणरत	...	निर्माणरत	५–००
३९.	गीता-दर्शन	हाँ	,,	...	,,	५–००

प्रेस में पुस्तकें

४०. जिन खोजा तिन पाइयाँ (कुंडलिनी-योग पर प्रवचन) २०–००
४१. मैं मृत्यु सिखाता हूँ
४२. महावीर और मैं
४३. प्रेम है द्वार प्रभु का
४४. श्रीकृष्ण (जीवन, साधना और संदेश)
४५. संभावनाओं की आहट

४६. जीवन ही है परमात्मा
४७. अंतर्वीणा
४८. जो घर बारै आपना
४९. क्या है मार्ग ? ज्ञान, भक्ति या कर्म ?
५०. समाधि के द्वार पर
५१. योग : नये आयाम

केवल गुजराती में उपलब्ध पुस्तकें

५२. गांधी मा डोकीयु अने समाजवाद प्रकाशक : युवक क्रांति दल, ०–३५
५३. अतीत नी आलोचना अने भावी नु चिंतन ,, ०–३५
५४. भ्रान्त समाजवाद : और एक खतरा ,, ०–५०
५५. तरुण विद्रोह ,, ०–५०
५६. परमात्मा क्यां छे ? प्रकाशक : आर० अंबाणी एण्ड कं० राजकोट ०–५०
५७. समाजवाद थी सावधान ,, ०–७५
५८. प्रेम, परमात्मा अने परिवार ,, ०–५०
५९. गांधीवादी क्यां छे ? ,, ०–५०
६०. व्यस्त जीवन मां ईश्वर नी खोज ,, ०–६०
६१. गांधीवाद वैज्ञानिक दृष्टिए ,, ०–५०
६२. धर्म अने राजकारण ,, ०–५०
६३. उठ जाग जुवान ,, ०–५०
६४. गांधीजीनी अहिंसानु पुनरावलोकन ,, ०–५०
६५. क्रान्तिनी वैज्ञानिक प्रक्रिया ,, ०–६०
६६. धर्म-विचार नथी उपचार ,, ०–६०
६७. पूर्णावतार श्रीकृष्ण संस्कार तीर्थ आजोल ०–४०
६८. प्रेमनी प्राप्ति ०–४०
६९. अंतर्दृष्टा आचार्य रजनीश (जीवन चरित्र) साहित्यनिधि, अहमदाबाद ०–७५
७०. अंतर्दृष्टा आचार्य रजनीश (जीवन प्रसंगो) ,, ०–५०
७१. अंतर्दृष्टा आचार्य रजनीश (ज्ञानवाणी) ,, ०–५०
७२. गीता-प्रवचन (लोकसमाचार विशेषांक) प्रजाबंधु प्रेस, अहमदाबाद १–००
७३. आचार्य रजनीश : क्या मार्ग ? (गुजराती आलोचना) ... २–००
आलोचक प्रकाशक : डाह्याभाई नानूभाई नायक, साहित्य संगम, बड़ौदा

विविध पुस्तकें

७४.	समाजवादा पासून सावधान (मराठी)	जीवन जागृति केन्द्र	०-५०
७५.	पूर्व का धर्म, पश्चिम का विज्ञान (हिन्दी)	,,	०-५०
७६.	अहिंसा दर्शन (गुरुमुखी, पंजाबी)	,,	०-४०
७७.	जीवन जो राज (सिंधी)	,,	०-५०
७८.	परिवार-नियोजन एक दार्शनिक चिंतन (हिन्दी)	,,	०-७५
७९.	अभिनव संन्यास (गुजराती)	,,	०-५०
८०.	ध्यान (गुजराती)	संस्कार तीर्थ	०-५०
८१.	प्रेम (गुजराती)	,,	०-७५
८२.	सूली ऊपर सेज पिया की (हिन्दी) (प्रेस में)		
८३.	जीवन-क्रान्ति की दिशा	सस्ता साहित्य मंडल	२-००

ENGLISH BOOKS BY ACHARYA RAJNEESH

I Translated from Original Hindi :

		Pages	Price
1.	Path to Self-Realisation	198	4.00
2.	Seeds of Revolutionary Thoughts	232	4.50
3.	Philosophy of Non-Violence	34	0.80
4.	Who Am I ?	145	3.00
5.	Earthen Lamps	247	4.50
6.	Wings of Love and Random Thoughts	166	3.50
7.	Towards the Unknown	54	1.50
8.	From Sex to Super-Consciousness	180	6.00

In Press :

9. The Mysteries of Life and Death
10. Journey Inwards
11. Beware of Socialism
12. God : Many Splendoured Love

II Original English Booklets

13.	Meditation : A New Dimension	36	2.00
14.	Beyond and Beyond	30	2.00
15.	Flight of Alone to the Alone	40	2.50
16.	L S D—A shortcut to False Samadhi	28	2.00
17.	Yoga : As a Spontaneous Happening	28	2.00

In Press

18. The Pathless Path
19. The Occult Mysteries of Dreaming
20. What is Yoga ?
21. This Insane Society

एक विशेष सूचना

'ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया' दिनांक १ सितम्बर '७० से ५ सितम्बर '७० तक बम्बई में पंच महाव्रत पर हुए पांच प्रवचनों का संकलन है। बाद में इन प्रवचनों के आधार पर बम्बई में दिनांक १० नवम्बर '७० से १७ नवम्बर '७० तक आठ प्रवचन-प्रश्नोत्तरों का आयोजन किया गया था। इनमें पंच-महाव्रत पर अनेक प्रश्नों का गहन विवेचन आचार्यश्री ने किया है। वे आठ प्रवचन 'सूली ऊपर सेज पिया की' शीर्षक से पुस्तकाकार में शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।